❁ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❁

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—हृषिकेश २२, वार–वासुदेव
रविवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०१८, १७ सितम्बर १९६१ | संख्या ४

कृष्णलीला-पंचकम्

[पं० अ० च० दास० शास्त्री, विद्यानिधि]

देवक्यां वसुदेवभावफलितं बन्दीगृहोद्भासितम्,
नन्दानन्दकरं यशोमतिसुतं राधामनोहारिणम् ।
वृन्दारण्यनिवासिनं सुरवरं गोपीजनाराधितम्,
वंशीमाल्यधरं शुभं नटवरं नौमि व्रजप्राणदम् ॥

क्रीडायां च रतं सदा सुतनुभि र्गोपांगनाभिः समम्,
कालिन्द्युपकूले कदम्बमुकुलैः शय्यार्पितं भूतले ।
कण्ठे माल्यचयं मुखे च मुरली कट्यां च पीताम्बरम्,
हस्ते कंकणके च पंकजयुतं नौमि स्मरारेः स्मरम् ॥

गृह्ये कर्मणि रक्तगोपललना दृष्ट्वा शनैरागतम्,
निःशब्दं नवनीतखादनपरं सार्धं खगै र्वानरैः ।
कस्याश्चिद् युवतेः पुरः सनिपुणं नृत्येषु गीतेषु च,
पश्चात् किंचन तं प्रसारितकरं नौमि स्वतो याचकम् ॥

राक्षस्या विषयुक्तदुग्धसहितं प्राणान्निपीतं छले,
हस्ताभ्यामुदपाटि येन बलिनी दन्तं महाहस्तिनः ।
मल्लैर्युध्य च चाणुरादिभिरिह कंसादिकं लीलया,
यो वीरांश्च जघान तं यदुवरं नौम्यन्तकस्यान्तकम् ॥

रक्षतुं व्रजबालकान् हुतवहं मुखाम्बुजेनापिवत्,
इन्द्रात्त्राणछलेन यो व्रजजनं गोवर्धनं चाकृत् ।
दम्भं येन च वत्सगोपहरणे चूर्णीकृतं ब्रह्मणः,
भोक्तारं सुविदं सुखं कुदमनं नौमीश्वरस्येश्वरम् ॥

श्रीश्रीजन्माष्टमी

आज भाई नन्द भवन आनन्द ।

त्रिभुवनपति अवतार लियो जहें, गावत वेद फणिन्द ॥

भाँदों अर्ध रात्रि आठन बुध, लगन घरी शुभ कन्द ।

रोहिण हर्षिन योग सुखद ग्रह, प्रकटे गोकुल चन्द ॥

गावत युवति सोहिली लै लै नाम यशोमति नन्द ।

ग्वाल परसपर हृदय मेलि दधि, छिरकत गावत छन्द ॥

बसन विभूषण पाय असीषत हरषे याचक वृन्द ।

"गौरी" को प्रभु देउ निछावर, चरन भक्ति गोविन्द ॥

—श्रीगौरीप्रसाद 'व्रजवासी'

भगवानकी अप्रकट-लीलाका रहस्य

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ७, संख्या ३, पृष्ठ ५३ से आगे]

श्रीमद्भागवत ११।३१।११—१३ श्लोकोंमें श्रीशुकदेव गोस्वामीकी परीक्षितके प्रति उक्तिकी व्याख्या—

सर्वकारणकारण श्रीकृष्णकी देहधारी मरणशील व्यक्तियोंके बीच जो आविर्भाव-तिरोभाव-चेष्टा है, वह नटकी लीलाकी भाँति है। वे स्वयं अविकृत रह कर अपनी मायाशक्तिके बलसे अभिनय मात्र करते हैं। वे स्वयं इस जगत्की सृष्टि कर अन्तर्यामीके रूपमें उसमें अनुप्रवेश कर प्रपञ्चमें उदित हुई लीलासे उपरत होकर अपनी महिमाके बलसे अपने नित्य अप्रकट राज्यमें अधिष्ठित रहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ नहीं समझना होगा, क्योंकि इसी अवतारमें अत्यन्त अधिक प्रभाव देखा गया है। कोई ऐसा कह सकते हैं कि यदि भगवान् अपनी रक्षा करनेमें समर्थ होते तो वे अपने शरीरके साथ थोड़ी देर और भी क्यों नहीं रह सके? इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि भगवान यद्यपि सर्वशक्तिमान हैं और सर्वशक्तिमान होने के कारण वे अनन्त जगतोंमें सृष्टि, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं, तथापि प्राकृत मरणशील शरीरके द्वारा कोई कार्य नहीं हो सकता—ऐसा सोचकर उन्होंने केवलमात्र आत्मनिष्ठोंकी दिव्यगति दिखला कर मर्त्य—यादवोंका संहार करानेके पश्चात् अपने शरीरको भी पृथ्वीलोकमें रखना नहीं चाहा, बल्कि उसे अपने निज-धाममें ही ले आये। अन्यथा पूर्वोक्त आत्मनिष्ठगण भी दिव्य गति लाभको अनादरपूर्वक योग-विभूतिके बलसे निज-निज-देह सिद्धिका विधान करके इस प्रापञ्चिक संसारमें स्थायी रूपमें रहनेके लिये चेष्टा न करने लगें—ऐसी कोई आशंका न उत्पन्न हो जाय, इसीलिये भगवानकी अन्तर्द्धान लीला है अर्थात् कोई ऐसा नहीं करे इसी उद्देश्यसे भगवानने अन्तर्द्धान लीला की है।

(—श्रीधर स्वामी)

तनु-भृज्जननवदाप्ययवच्च ईहा—"तनुभृज्जनना-प्ययेहा"। 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः अजायमानो बहुधा विजायते' इति। अजात-जातवद्विष्णुरमृत-मृतवत् तथा। मायया दर्शयेन्नित्यमज्ञानां मोहनाय च' ॥—इति ब्राह्मे। जगतो मोहनार्थाय भगवान् पुरुषोत्तमः। दर्शयेन्मानुषीं चेष्टां तथा मृतकवद्विभुः॥ प्रकाशयेद देहोऽपि मोहाय च दुरात्मनाम। मायया मृतकं देहं तदा सृष्ट्वा प्रदर्शयेत्। कुतो हि मृतकं तस्य मृत्यभावात् परात्मनः॥ इति च। 'जीव-विष्णोरभेदश्च देह-योग-वियोजने। विष्णोर्दुःखं ऋणित्वादि पराभवस्तथैव च॥ अस्वातन्त्र्यञ्च वेदादावुक्तवद्भासते विभोः। क्वचिद्विमोहाय दैत्यानां सुदुरात्मनाम्॥—इति ब्रह्माण्डे। अग्रावन्तर्दधे भैष्मी सत्यभामा वने तथा। न तु देहवियोगोऽस्ति तयोः शुद्धचिदात्मनोः॥' इति च"। अर्थात्—

'तनुभृज्जनाप्ययेहा—शब्दसे शरीरधारियोंके जन्म-ग्रहणकी एवं मृत्यु होनेकी भाँति चेष्टासे है। श्रुति कहती हैं—समस्त जीवोंके ईश्वर विष्णु ब्रह्माण्डके भीतर विराजमान हैं। वे जन्मरहित होने पर भी बद्धजीवोंकी भाँति अनेक रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं।' ब्रह्माण्ड पुराणमें भी ऐसा कहा गया है कि—भगवान विष्णु मायाके बलसे अज्ञ व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिये जन्म न लेने पर भी जन्मे हुए जीवोंकी भाँति एवं बिना मरे हुए ही मरे हुए जीवोंकी भाँति अपनेको दिखलाते हैं।" अन्यत्र भी—भगवान पुरुषोत्तम ही जगतको मोहित करनेके लिये

मनुष्यकी तरह चेष्टा करते हैं अर्थात् लीला करते हैं। पुनः विभु विष्णु स्वयं जड़ शरीर धारण किये बिना ही दुष्टोंको मोहित करनेके लिये मरणशील जीवोंकी भाँति प्रकाशित होते हैं। उस समय वे अपनी मायाके बलसे अपने जैसा एक मृत-शरीर सृष्टि करके छोड़ जाते हैं। वास्तवमें परमात्मा श्रीहरि अमृत-स्वरूप हैं, अतएव उनका मृत शरीर कैसे संभव है? ब्रह्माण्ड पुराणमें भी ऐसा गया है—'वेदोंमें कहीं-कहीं सुदुरात्मा दैत्योंको मोहित करनेके लिये 'जीव और ईश्वर-विष्णु अभिन्न हैं, जीवोंकी भाँति विष्णुका भी जन्म और मरण होता है, जीवोंकी भाँति उनको भी दुख होता है, उन्हींकी भाँति विपक्षके बाणोंसे उनके शरीरमें छिद्र हो जाते हैं, उनकी पराजय होती है, दूसरोंके अधीन हो जाते हैं—इत्यादि मानों आपात् दृष्टिसे ही कथित हुआ है।' शुद्धचिदात्मा होनेके कारण प्राकृत जीवोंकी भाँति उनका शरीर-त्याग नहीं है।

(—श्रीमध्वाचार्यकृत भागवत-तात्पर्य)

जब यादवोंमें ही प्राकृतत्त्व नहीं था, तब राम और कृष्णके सम्बन्धमें कहना ही क्या है?—ऐसा सिद्धान्त स्थापन करते हुए कहते हैं—जो यादवगण तदीय-देह हैं अर्थात् शुद्ध भागवत शरीरधारी पार्षद हैं, उनकी आविर्भाव और तिरोभावकी चेष्टाएँ केवल मात्र कृष्णकी भाँति मायानुकरण ही समझना चाहिए। जिस प्रकार कोई जादूगर अपने या दूसरोंके जीवित शरीरको मार डालता है या जला देता है और फिर उसे जीवित दिखला देता है, ठीक उसी प्रकार भगवान दिखलाते हैं, वास्तवमें न तो उनका जन्म होता है, न मरण ही। भगवान विश्वकी सृष्टिके मूल कारण हैं, वे अचिन्त्य शक्तिमान हैं, उनके लिये वैसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसी प्रकार 'सीतयाराधितो बह्निच्छाया सीतामजीजनत्। तां जहार दशग्रीवः सीता बह्निपुरं गता। परीक्षा-समये बह्नि छाया सीता विशेष सा। वह्निः सीता समानीय तत्पुरस्तादनीनयं॥'—इस बृहदग्निपुराणके बचनके अनुसार प्रकृत जीव रावण द्वारा अपहृत भगवल्लक्ष्मी श्रीसीतादेवीके हरणकी मायिकी या मिथ्यालीलाका दृष्टान्ताभास एवं श्रीसंकर्षणके प्रति मोहित लोगोंकी अन्यथा प्रतीतिका दृष्टान्ताभास—ये दोनों स्थल भी प्राकृत लोगोंको मोहित करनेके लिये ही उस रूपमें वर्णित हैं। ऐसे-ऐसे वर्णनोंसे विज्ञ-भक्तजन मोहित नहीं होते।

अप्राकृत यादवोंकी तो बात ही क्या है, जो कृष्ण के पाल्यजन हैं उनकी भी मृत्यु संभव नहीं है। वही कृष्ण क्या अपने निजजन यादवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं थे? अवश्य थे, अतएव यादवोंकी शरीर-त्याग लीलाका दर्शन तात्त्विक-लीलानुगत नहीं है; उन लोगोंका सशरीर ही गोलोक-गमन युक्ति-संगत और शास्त्रसिद्ध है।

यहाँ पर कोई-कोई ऐसा प्रश्न कर सकते हैं कि मान लिया कि यादवगण सशरीर ही स्वधाममें चले गये; परन्तु जब भगवान विराजमान थे, तब उन लोगोंको तो भगवद्विरह दुःख नहीं था; इसके अतिरिक्त यदि भगवान अपने प्रियजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ थे, तो ऐसी दशामें वे मर्त्यलोकके प्रति अनुग्रह करनेके लिये यादवोंके समान अन्यान्य पार्षदोंको आविर्भूत करा कर उनके साथ वे कुछ समय और भी क्यों नहीं मर्त्यलोकमें प्रकट रहे? इसके सुसिद्धान्त पूर्ण उत्तरमें इस श्लोक द्वारा यह दिखलाया गया है कि भगवान् और यादवोंकी आपसमें जो प्रीति थी, वह अव्यभिचारी है—'यद्यपि भगवान अशेष शक्तिमान हैं, तथापि वे यादवोंको अन्तर्हित कर स्वयं ऐसा सोचते हैं कि यादवोंके बिना इस मर्त्यलोकमें मेरा क्या प्रयोजन है? ऐसा सोच करके ही वे यादवोंकी गतिका अनुसरण करना ही अच्छा समझे तथा थोड़ी देरके लिये भी अपने शरीरको इस मर्त्यलोकमें रखनेकी इच्छा नहीं किये; बल्कि उसी समय स्वयं सशरीर अपने नित्यधामको पधारे।'

(क्रम-सन्दर्भ)

भगवान् और उनके परिकरगण जब अन्तर्द्धान हो गये तब इस दुःखद संवादको सुनकर महाराज परीक्षित बड़े शोकार्त्त हो गये। उस समय श्रीशुकदेव गोस्वामी लीलातत्त्व-सम्बन्धी सिद्धान्तोंका वर्णन कर महाराज परीक्षितको सान्त्वना दे रहे हैं। शरीर-धारी जीवोंकी भाँति जो परमेश्वरकी जन्मचेष्टा या मरण-चेष्टा होती है, उसे मायानुकरण ही समझना चाहिए, उसे वास्तवः या तत्त्वतः नहीं मानना चाहिए। हाड़-रक्त-मांस आदि से बने हुए शरीरको धारण करनेवाले जीवोंका जन्म और मृत्यु-दोनों ही जड़सुख-दुखमय हैं। 'परन्तु चिन्मयविग्रह परमेश्वर के आविर्भाव और तिरोभाव दोनों ही सम्पूर्ण चित्-सुखमय हैं।" आनादेयमहेयञ्च रूपं भगवतो हरेः। आविर्भाव-तिरोभावावस्योक्ते ग्रहमोचने ॥"—इति ब्रह्माण्डे अर्थात् ब्रह्माण्ड पुराण कहते हैं,—'भगवान श्रीहरिका रूप जड़ीय हेयता और जड़ीय उपादेयतासे रहित होता है। परन्तु उसके सम्बन्धमें 'ग्रहण' और मोचन (त्याग)—इन दो शब्दोंसे उनके आविर्भाव और तिरोभावको समझना चाहिए। इस विषयको ऐन्द्रजालिक नट द्वारा प्रदर्शित उस खेलसे समझना चाहिए जिसमें स्वयं जीवित रह कर भी वह कभी अपना गला काट लेता है और कभी दूसरोंके गले या अङ्गोंको काट देता है और फिर स्वयं जी उठता है या दूसरोंको जिला देता है। भगवान मुनियोंका अभिशाप ग्रहण करते हैं। और उनके अभिशापसे उत्पन्न पारस्परिक कलह—शस्त्रास्त्रों द्वारा परस्पर प्रहार आदि आरम्भ होनेपर उसमें स्वयं भी योगदान करते हैं। तत्पश्चात्, मर्त्य यादवोंके साथ स्वयं भी एरकास्त्र ग्रहण कर कुछ देर तक क्रीड़ा करते हैं और अन्तमें सबका संहार होने पर अपनी मायाके प्रभाव से उस लीलासे अगल होकर एक जगह बैठ जाते हैं।

यद्यपि भगवान निरंकुश-ऐश्वर्यमय और अनन्त शक्तिमान हैं तथापि उन्होंने यादवोंमें प्रविष्ट देवताओं को स्वर्गमें भेज कर अपने तथा अपने पार्षद यादवों के शरीरोंको इस मर्त्यलोकमें न रख कर अन्तर्हित करनेके लिये इच्छा की; क्योंकि मर्त्यलोकमें उनका अब प्रयोजन ही क्या था ? अर्थात् भगवान् मर्त्य-लोककी अपेक्षा नहीं रखते—अपने नित्यधाम—गोलोककी ही अपेक्षा करते हैं। स्वर्ग-स्थित ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे वे मर्त्यलोकमें आविर्भूत हुए थे, और पुनः उन्हींलोगोंकी प्रार्थनासे उनलोगोंको अपना वैकुण्ठ-गमन दिखलाकर अर्थात् ज्ञापन कर वैकुण्ठमें चले गये यही यहाँ पर विशेष रूपसे व्यक्त कर रहे हैं। इस श्लोककी दूसरी कोई भी व्याख्या पूर्वोक्त (भा० ३।२।१६) श्लोकके विरुद्ध होने के कारण उसे शुद्ध भक्तजन स्वीकार नहीं करते तथा दूसरे प्रकार का अर्थ असुरसम्मत अर्थ है और उसे भक्तजन स्वीकार नहीं करते, ऐसा स्वयं उद्धवजी ने भा० ३।२।१० में कहा है—भगवानको मायासे मोहित होकर जो सब मर्त्य यादवगण और शिशुपाल आदि भगवानके शत्रुभाव मिश्रित विरोधीगण भगवानकी निन्दा करते हैं, उनके वैसे-वैसे वचनोंसे मेरी बुद्धि मोहित नहीं होती अर्थात् जिनकी बुद्धि मोहित हो जाती है, वे भी निश्चय ही मायामूढ़ हैं।'

(—श्रीविश्वनाथ)

(श्रीमध्वाचार्यकृत महाभारत-तात्पर्य ३।७६-८३) भगवान् श्रीविष्णुका कहीं भी जीवोंके समान जन्म-ग्रहणका उदाहरण नहीं है, अतएव उनकी मृत्यु कैसे संभव है ? वे न तो किसीके द्वारा बध किये जा सकते हैं और न मोह प्राप्त होते हैं। नित्यानन्दैक-स्वरूप स्वतंत्र भगवानको दुःख कहाँ है ? सम्पूर्ण जगतके ऊपर प्रभुत्व करके भी भगवान् श्रीहरि साधारण कृपककी भाँति अपनेको दुर्बल दिखलाकर अपनी नित्यलीलाओंका अनुष्ठान करते हैं। परन्तु कभी-कभी वे अपनेको भूल जाते हैं, स्त्रैण पुरुषोंके समान पत्नी के विरहसे दुःखी होकर सीताजीकी खोज करते हैं, इन्द्रजीत द्वारा नागपाशमें बँध जाते हैं—इस प्रकार जो लीलाएँ दिखलाते हैं, उसे उनकी असुर-मोहन लीला ही समझनी चाहिए। इसके अतिरिक्त वे असुरोंके अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे मोह प्राप्त हो जाते हैं,

बाणोंसे उनके अङ्गोंमें घाव हो जाते हैं अथवा रक्त गिरने लगता है, अज्ञकी भाँति दूसरोंसे कुछ जानने के लिये पूछने लगते हैं और शरीर त्याग कर स्वर्ग गमन करते हैं—इत्यादि लीलाएँ वे असुर-मोहनके लिये नटके नाट्याभिनयकी भाँति करते हैं। अतएव देवतालोग भगवानकी ऐसी लीलाओंको 'असत्य कुहक' अर्थात् मिथ्या वंचनामात्र ही समझते हैं। भगवान श्रीहरिकी जो आविर्भाव और तिरोभावादि लीलाएँ हैं, वे प्राकृत शरीरधारी जीवोंकी भाँति नहीं हैं, बल्कि वे प्राकृतहेयगुण-वर्जित सम्पूर्ण रूपसे निर्मल हैं। परन्तु इन लीलाओंद्वारा दुष्ट व्यक्ति तो मोहित होते ही हैं, साथ ही भगवानके तत्त्वको न जाननेवाले सरल सज्जन व्यक्ति भी मोहित हो पड़ते हैं। परमात्मा श्रीहरिकी ऐसी लीलाएँ जीवोंकी अपनी-अपनी चित्तवृत्तिकी योग्यताके अनुसार फल प्राप्तिके लिये ही समझना चाहिए।'

(इसी महाभारत-तात्पर्यके ३२ अः ३ अ ३४ में)
'भगवान श्रीहरि अपने जिस-जिस आविर्भावके समय भ्रान्ति या माया प्रदर्शन नहीं करते हैं, सर्व जीवोंके ईश्वर अच्युत स्वयं सच्चिदानन्द विग्रह होकर भी उस-उस लीलाके तिरोभावके समय वे जीवोंके शरीर-त्यागका अनुकरण करके असुरोंको अन्धतमो लोकमें भेजनेके लिये मोहित करके अपने शरीर जैसा दिखनेवाला दूसरा एक मौतिक शरीर पृथ्वीपर सुलाकर स्वयं सशरीर वैकुण्ठको पधार जाते हैं।

श्रीवादिराज स्वामी श्रीमध्वसम्प्रदायमें द्वितीय मध्वाचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इन तार्किक-करि-केशरी द्वारा रचित युक्तिमल्लिका ग्रन्थके अन्तर्गत 'शुद्धिसौरभ' नामक अंशके संख्या १८-३६ द्रष्टव्य हैं तथा ३७-३९ संख्यामें—'नेत्र द्वारा चन्दनकी लकड़ी देखनेसे यह जाना जाता है कि यह सुगन्धी चन्दनकी लकड़ी है। सुगन्धी-विषयक ऐसा ज्ञान नासिकाके सहारे ही नेत्र ग्रहण करते हैं, नहीं तो पहले नासिका द्वारा चन्दनकाष्ठका सौरभ अनुभूत न हुए रहनेसे केवल नेत्रद्वारा दर्शनसे सुगन्धका ज्ञान सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार अप्राकृत वस्तुके सम्बन्धमें कोई भी प्रमाण कानोंकी सहायतासे ही ग्रहण किये जाते हैं। अप्राकृत वस्तुकी उपलब्धिके विषयमें श्रुति ही प्रमाण है और श्रुतिको कानोंसे सुनकर ही ग्रहण किया जाता है। इस विषयमें श्रुति-विरोधी प्रत्यक्ष आदि प्रमाण-समूह समर्थ नहीं। अतएव ईश्वर-तत्त्व विचारके सम्बन्धमें अज्ञ लोगोंकी दोषपूर्ण दृष्टि कदापि प्रमाण नहीं है।'

इसके अतिरिक्त गीताके चौथे अध्यायके ६, ९, १४, सातवें अध्यायके ६, ७, २४, २५; नवें अध्यायके ८, ९, ११, १२, १३; दसवेंके ३, ८ तथा सोलहवेंके १९, २० आदि श्लोक विशेष रूपसे आलोच्य हैं।

अंतमें श्रीमद्भागवत ११।३१।८-९ श्लोकोंमें परीक्षित महाराजके प्रति श्रीशुकदेवके कथनको पाठकों के समक्ष उपस्थित कर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥
सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥

अर्थात्—भगवान श्रीकृष्णकी गति मन और वाणीसे परे—अचिन्त्य है। इसीलिये तो जब भगवान अपने धाममें प्रवेश करने लगे तब देवताओंमें से कुछ लोग उनको देख न सके और कुछ देवता उनको देखकर बड़े विस्मित हुए। जैसे बिजली मेघ-मण्डलको छोड़कर जब आकाशमें प्रवेश करती है, तब मनुष्य उसकी गति देख नहीं पाते, केवल देवता ही लक्ष्य कर सकते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मादि देवता भी श्रीकृष्णजीकी गतिके सम्बन्धमें कुछ भी जान नहीं सके, केवल-मात्र भगवानके पार्षदगण ही उसे लक्ष्य कर सके।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीसरस्वती ठाकुर।

उपदेशामृतकी पीयूषवर्षिणी वृत्ति

त्रिदण्डिगोस्वामीके लक्षण

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥१॥

श्रीश्रीगौरचन्द्राय नमः

यत्कृपासागरोद्भूतमुपदेशामृतं भुवि ।
श्रीरूपेण समानीतं गौरचन्द्रं भजामि तं ॥
नत्वा ग्रन्थप्रणेतारं टीकाकारं प्रणम्य च ।
मया विरच्यते वृत्तिः 'पीयूष परिवेशनी' ॥
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येनकृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १।१।८)

उपरोक्त कारिका-सम्मत अनुकूल-ग्रहणका संकल्प एवं प्रतिकूलका त्याग कर भगवत्-अनुशीलन ही भजन-परायण व्यक्तियोंको नितान्त प्रयोजन है। आनुकूल्य का संकल्प तथा प्रतिकूल्यका वर्जन—ये शुद्धा भक्ति के साक्षात् अङ्ग नहीं हैं, बल्कि ये दोनों भक्तिमें अधिकार प्रदान करनेवाली शरणापत्ति-लक्षण श्रद्धाके अङ्ग हैं। जैसे—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीतिविश्वासो गोप्तृत्वेवरणं तथा ।
आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥

इस श्लोकमें प्रतिकूल वर्जन करनेका उपदेश है। वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोधका वेग, जिह्वाका वेग, उदरका वेग और उपस्थका वेग—इन छः वेगों को जो व्यक्ति सहनेमें समर्थ होता है, वह समस्त पृथिवी पर शासन कर सकता है।

"शोकमर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम् ।
कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्त्ति-सम्भावना भवेत् ॥
(श्रीपद्मपुराण)

इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता इत्यादि उत्पात मनमें सर्वदा उदित होकर—(१) वाणीके वेग द्वारा अर्थात् भूतोद्वेगकारी वाक्य प्रयोग द्वारा (२) मानसवेग अर्थात् नाना प्रकारके मनोरथों द्वारा (३) क्रोधवेग—अर्थात् कटुवाणी आदिके प्रयोग द्वारा (४) जिह्वा वेग अर्थात् मीठा, खट्टा, कड़वा, तीता, नमकीन और कषैला—इन छः प्रकारके रसोंकी लालसा द्वारा (५) उदरवेग अर्थात् अत्यन्त अधिक भोजनकी चेष्टा द्वारा और (६) उपस्थ वेग अर्थात् स्त्री-पुरुष सहवासकी लालसा द्वारा मनको असत् विषयोंकी ओर खींचते हैं। इसलिए शुद्ध-भक्तिका अनुशीलन नहीं हो पाता। भजन-प्रयासी व्यक्तिके चित्तको भक्ति-प्रवण करनेके लिये श्रीमद्रूपगोस्वामीजीने इस श्लोककी सर्वप्रथम अवतारणा की है। उक्त षड्वर्गकी निवृत्ति-चेष्टा ही भक्ति-साधन है—ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह भक्ति मन्दिरमें प्रवेश पाने के लिए योग्यता उपलब्धिका सोपान स्वरूप है। कर्ममार्ग और ज्ञानमार्गमें षड्वर्ग-निवृत्तिके उपदेश हैं। परन्तु वे उपदेश-समूह शुद्ध भक्तोंके लिये पालनीय नहीं हैं। शास्त्रोंमें कृष्णनाम-रूप-गुण-लीला आदिके श्रवण, कीर्तन और अनुस्मरण को ही साक्षात् भक्ति कहा गया है।

भक्ति पथमें प्रवेश करनेवाले पथिककी अपरिपक्क अवस्थामें उक्त षड्वेग नाना प्रकारकी बाधाएँ डालते हैं। उस समय भक्त अनन्य शरणापत्तिका आश्रय लेकर दस प्रकारके नामापराधोंसे दूर रहकर नामके प्रभावसे इन विघ्न-बाधाओंको भी सत्संगके बलसे दूर करनेमें समर्थ होता है।

तदाश्रय अपराध यह है—

श्रुत्वापिनाम माहात्म्यं यः प्रीतिरहितोऽधमः ।
अहं ममादिपरमो नाम्नि सोऽपराधकृत् ॥
(श्रीपद्मपुराण)

भक्तजन युक्त-वैराग्य-परायण होते हैं अर्थात् शुष्क वैराग्यसे दूर रहते हैं। इसलिए विषय संस्पर्शादि-परित्यागकी विधि उन लोगोंके लिए नहीं है। मनका वेग-असत्तृष्णासे रहित होने पर नेत्रवेग, प्राण-वेग, श्रवण वेग आदि दूसरे-दूसरे समस्त प्रकारके वेग नियमित हो जाते हैं।

इसलिये षड्वेगों पर विजय पा लेनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकता है। कथित वेगोंको सहन करनेका उपदेश केवल गृही भक्तोंके लिए ही है, क्योंकि गृह-त्यागीके लिए सम्पूर्ण वेगादि वर्जन गृह-त्यागसे पूर्व ही सिद्ध हुए होते हैं।

भक्तिके प्रतिकूल छः दोष

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसंगश्च लौल्यंच षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥२॥

द्वितीय श्लोकमें भी केवल प्रतिकूल विषयोंका वर्जन करनेका निर्देश है। अत्याहार (किसी इन्द्रिय द्वारा उसके विषयको अधिक रूप में ग्रहण करना), प्रयास, प्रजल्प, नियमाग्रह, जनसंग और लौल्य—ये छः दोष भक्ति-विरोधी हैं। (१) अत्याहार-अर्थात् अधिक सेवन। किसी भी विषयका अधिक सेवन अथवा अवश्यकतासे अधिक संग्रहकी चेष्टा—यह सब अत्याहार है। गृहत्यागी भक्तके लिए संचय करनेका निषेध है। गृही वैष्णवके लिए निर्वाहोपयोगी संग्रहकी आवश्यकता है। परन्तु आवश्यकतासे अधिक संग्रह अत्याहार है। भजन-पिपासु लोगोंके लिए विषयी लोगोंकी भाँति संग्रह करना उचित नहीं है। (२) प्रयास—भक्ति-विरोधी चेष्टा अथवा विषयोंको भोगनेकी चेष्टासे तात्पर्य है। (३) प्रजल्प—समयको अनर्थक ग्राम्यवार्त्ताओंमें बिता देना ही प्रजल्प कहलाता है। (४) नियमाग्रह—क्रमशः उच्च अधिकारकी प्राप्तिके समयमें निम्नाधिकारगत नियमोंके प्रति आग्रह एवं भक्त्युपयोगी नियमोंके पालनमें अग्रह अर्थात् निष्ठाका अभाव ही नियमाग्रह कहलाता है। (५) नसंग—भगवत् भक्तोंके संगके अतिरिक्त दूसरे लोगोंका संग जन-संग कहलाता है। (६) लौल्य—नाना प्रकारके असत् मतों या अस्थिर सिद्धांतों को ग्रहण करनेका लोभ या चंचलता और तुच्छ विषयों में आसक्त होना ही लौल्य वृत्ति है। प्रजल्प द्वारा साधुनिन्दा होती है एवं लौल्य द्वारा दूसरे-दूसरे अस्थिर सिद्धान्तोंकी ओर रुचि पैदा होती है, जिससे नामापराध होता है ॥२॥

भक्तिके अनुकूल षड्गुण

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात् तत्तत्कर्मप्रवर्त्तनात्।
संगत्यागात् सतो वृत्तेः षड्भिर्भक्तिः प्रसिध्यति ॥३॥

जीवन-निर्वाह और भक्तिका अनुशीलन—ये दोनों ही भक्तके लिये आवश्यक हैं। इस श्लोककी पहली अर्द्धलीमें भक्ति अनुशीलनकी अनुकूल क्रियाओंकी ओर संकेत किया गया है और दूसरी अर्द्धली में भक्त-जीवन की व्यवस्था दी गयी है। उत्साह, निश्चय, धैर्य, भक्त्युपयोगी कार्य-अनुष्ठान, संग-त्याग और सदाचारसे अथवा सद्वृत्ति से भक्ति सिद्ध होती है। (१) उत्साह—भक्तिके अनुष्ठान में उत्सुकताको उत्साह कहते हैं। उत्साहके अभावमें उदासीनतासे भक्तिलोप हो जाती है। भक्तिके अङ्गोंका आदरपूर्वक पालन करना ही उत्साह है। (२) निश्चयका अर्थ है—दृढ़, विश्वास। (३) धैर्य-अभिष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें विलम्ब होनेपर भी साधन के अङ्गोंमें शिथिलता न आने देनेका नाम धैर्य है। (४) भक्त्युपयोगी कर्म विधि और निषेधके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। श्रवण और कीर्तन आदि दो प्रकार के होते हैं। श्रीकृष्ण प्रीतिके लिए अपने सुख-भोगोंका परित्यागका नाम ही निषेध है। (५) संग त्याग—अभक्त, स्त्री-संग और स्त्री-संगी—इनका संग, अभक्त अर्थात् विषयी लोगोंका संग, मायावादी एवं धर्मध्वजी लोगोंका संग—इन सबका त्याग करना चाहिये। (६) सद्वृत्ति—साधुजनों ने जिस सदाचारका आचरण किया है एवं जिस वृत्तिका अवलम्बन कर जीवन निर्वाह किया है,

उसका आचरण करना चाहिए। गृहत्यागी भक्त भिक्षा एवं माधुकरी द्वारा तथा गृहस्थ-भक्त वर्णाश्रमके अनुकूल वृत्तिद्वारा जीविका निर्वाह करेंगे—यही सद्वृत्ति है ॥३॥

प्रीतिके छः लक्षण

[ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयतेचैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥४॥]

जनसङ्ग भक्तिके प्रतिकूल है। इसलिए उसका त्याग करना आवश्यक है। भक्तिपरायण व्यक्तियोंके लिए जनसङ्ग-शोधक शुद्धभक्तोंका सङ्ग करना चाहिए। भक्तिपोषक साधुसङ्गरूप प्रीतिका वर्णन इस चौथे श्लोकमें है। भक्तोंको जिस चीजकी आवश्यकता हो, उन्हें प्रीतिपूर्वक उन चीजोंको देना और भक्तजन कृपापूर्वक जो कुछ दें उसे प्रीतिपूर्वक ग्रहण करना, अपनी गुप्त बातें भक्तोंके पास कहना तथा भगवत्-भक्तोंसे रहस्यपूर्ण तत्त्वोंका श्रवण करना, भक्तोंको प्रीतिपूर्वक भोजन कराना एवं भक्तों द्वारा दिये गये प्रसाद आदिका सेवन करना—संतोंके साथ ये छः क्रियाएँ होने पर साधु-संग शुद्ध रूपमें होता है। ये छः क्रियाएँ प्रीतिके लक्षण हैं।

मध्यमाधिकारीके लिए तीन प्रकारकी वैष्णव-सेवा

[कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्तिचेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम् ।
शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य-
निन्दादिशून्यहृदमीप्सित-सङ्गलब्ध्या ॥५॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति सः मध्यमः ॥]
(श्रीमद्भागवत् ११।२।४६)

इस शिक्षाके अनुसार साधक जब तक मध्यम अधिकारमें रहता है, उतने दिन तक वह भक्त-सेवा करनेके लिए बाध्य है। उत्तम भक्तकी सबमें समबुद्धि होती है; इसलिए भक्त-अभक्तमें भेद बुद्धि नहीं रहती। मध्यम भक्त भजन-प्रयासी होता है। इस पाँचवें श्लोकमें मध्यम भक्तोंका उत्तम श्रेणीके भक्तोंके प्रति कैसा आचरण होना चाहिए—इसका निर्देश है। स्त्री-सङ्गी, अभक्त, विषयी लोगोंसे दूर रहकर उनके दोषोंको अपने अन्दर नहीं आने दे। परन्तु सम्बन्ध-तत्त्व-ज्ञानके अभावके कारण स्वल्प-बुद्धि वाले कनिष्ठ भक्तोंको बालिश अर्थात् अज्ञ समझकर मध्यम भक्त उन पर कृपा करेंगे। उनके मुखसे कृष्ण-नाम श्रवण कर मध्यम भक्त मन ही मन उनका आदर करेंगे। दीक्षित (कनिष्ठ) व्यक्ति यदि हरि-भजन कर रहा है तो मध्यम भक्त प्रणामके द्वारा उसका आदर करेंगे। दूसरोंकी निन्दासे रहित महा-भागवत लोगोंके संगको कल्याणकारी समझकर उनका आदरसे सेवन करना चाहिए। इस प्रकारकी वैष्णव सेवा ही सर्वार्थ सिद्धिका मूल है ॥५॥

प्राकृत दृष्टिसे अप्राकृत वैष्णव-दर्शन निषिद्ध है

[दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषै-
र्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत् ।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुद-फेन-पंकै-
र्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः ॥६॥]

शुद्ध भक्तोंके दोषको देखकर उन लोगोंको प्राकृत-समझना उचित नहीं है, छठे श्लोकमें यही उपदेश है। शुद्ध भक्तमें कुसङ्ग और नामापराध होना असम्भव है। उनमें शरीरगत और स्वभावगत कुछ-कुछ दोष हो सकते हैं। जैसे—खराब-लक्षण, पीड़ा, कुरूपता, बुढ़ापा आदि शरीरगत दोष हैं। नीच वर्ण, कठोरता, आलस्यादि—ये स्वभावगत दोष हैं। जिस प्रकार जल के धर्मके कारण गंगाजलमें बुद्बुद, फेन और कीचड़ आदि होने पर भी वह अपवित्र नहीं समझा जाता, वह अपना ब्रह्म-द्रवत्व परित्याग नहीं करता, उसी प्रकार आत्मस्वरूप प्राप्त वैष्णवगण भी जड़देहके जन्म और विकारधर्म द्वारा दूषित नहीं होते। इसी-लिए भजन-प्रयासी व्यक्ति शुद्ध-वैष्णवमें इन दोषोंको

देखकर भी उनकी अवज्ञा नहीं करेंगे। ऐसा करनेसे अपराधी बनेंगे ॥६॥

अविद्या दूर होने तथा नाममें रुचि होनेका उपाय

[स्यात् कृष्णनामचरितादि सिताप्यविद्या-
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा
स्वाद्वीकमाद्भवति तद्गतमूलहन्त्री ॥७॥]

तीसरे श्लोकमें भक्तिपोषक जिन गुणोंको बतलाया गया है, उनके साथ-साथ सम्बन्ध-ज्ञानके सहित कृष्णनामादि अनुशीलनकी प्रणालीका इस श्लोकमें वर्णन है। अविद्यारूपी पित्तसे उत्तप्त रसना द्वारा कृष्णकी लीला-कथाओं और उनके नामादिका कीर्त्तन नहीं हो सकता है। किन्तु आदरके साथ नित्यप्रति सेवन करनेसे नामचरितादि रूपी मिश्री अविद्या रोगको नाश करनेमें समर्थ होती है। कृष्णरूप विभु-चैतन्य-सूर्यकी किरण-कणोंके समान प्रत्येक जीव स्वभावतः कृष्णदास है। इस कृष्णदास्यकी विस्मृतिसे जीव अविद्यारूप रोगसे ग्रस्त हो गया है; जिसके कारण कृष्णनामचरितादिके प्रति रुचिसे शून्य हो गया है। किन्तु साधु-गुरु-वैष्णवकी कृपासे सत्सङ्गका सेवन करके वह पुनः नाम, गुण, रूप लीलाका स्मरण करनेमें समर्थ होता है और अपने स्व-स्वभावको प्राप्त कर लेता है। जैसे-जैसे स्वस्वभावका विकास होता जाता है वैसे-वैसे ही भगवानके नामचरितादिमें रुचि उत्पन्न होती रहती है। इसके साथ ही जीवकी अविद्या भी दूर होती जाती है। मिश्री ही तुलनाका स्थल है। जिस प्रकार पित्तिया रोग-ग्रस्त रसनाको मिश्री अच्छी नहीं लगती, किन्तु मिश्रीका सेवन करते रहनेसे पित्तका नाश हो जायगा वैसे-वैसे मिश्री मीठी लगने लगेगी। अतएव उत्साह विश्वास और धैर्यके साथ कृष्णनामचरितादिका श्रवण कीर्त्तन करते रहना चाहिए ॥७॥

श्रीव्रज-भजनकी विधि—

[तन्नामरूप चरितादि सुकीर्त्तनानु
स्मृत्योः क्रमेण रसना मनसो नियोज्य ।
तिष्ठन् व्रजे तदनुरागि-जनानुगामी
कालं नयेदखिलमित्युपदेश-सारम् ॥८॥]

इस श्लोकमें भजनकी प्रणालीकी तथा भजनके लिए स्थानकी व्यवस्था दी गयी है। क्रमोन्नति-प्रणालीसे निरन्तर साधन करनेके अभिप्रायसे नाम रूप चरितादिका सुन्दर रूपसे कीर्त्तन और स्मरण विधिमें मन और रसनाको नियुक्त करके व्रजमें वास करते हुए व्रज रसानुरागी जनोंके अनुगत होकर जीवनकी प्रत्येक घड़ी बितानी चाहिए। इस मानस-सेवा द्वारा मनसे व्रजवासकी ही प्रयोजनीयता है।

भजनीय स्थान समूहका तारतम्य

[वैकुण्ठाज्जनितो वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्
वृन्दारण्यमुदारपाणि-रमणात्तत्रापि गोवर्द्धनः ।
राधाकुण्डमिहापि गोकुलपतेः प्रेमामृताप्लावनात्
कुर्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ॥९॥]

भजनीय स्थानोंमें श्रीराधाकुण्ड सबसे श्रेष्ठ है। यह इस नवें श्लोकमें बतलाया गया है। कृष्णका जन्म होनेके कारण मथुरा ऐश्वर्यमय परव्योम वैकुण्ठ से श्रेष्ठ है। मथुरा मण्डलके भीतर वृन्दावन श्रेष्ठ है उदारपाणि श्रीकृष्णकी नानाप्रकारकी लीलाओंके स्थान होनेके कारण श्रीगोवर्द्धन व्रज भरमें श्रेष्ठ है। श्रीमद्-गोवर्द्धनके निकट ही श्रीराधाकुण्ड विराजमान हैं। वहाँ पर श्रीकृष्णके प्रेमामृतका विशेष रूपमें भण्डार होनेसे वही सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा कोई भी भजन विवेकी पुरुष न होगा, जो राधाकुण्डकी सेवा नहीं करेगा? अर्थात् भगवद् भक्तजन निश्चय ही राधाकुण्डकी सेवा करते हैं। राधाकुण्डमें स्थूल देह अथवा सूक्ष्म देहसे निरन्तर वास कर पूर्वोक्त भजन-प्रणाली अवलम्बन करना चाहिए ॥९॥

साधक और भक्तोंका स्तरभेद

[कर्मिभ्यः परितो हरेः प्रियतया व्यक्तिं ययुर्ज्ञानिन-
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्त भक्तिपरमाः प्रेमैकनिष्ठास्ततः ।
तेभ्यस्ताः पशुपालपंकजदृशस्ताभ्योऽपि सा राधिका
प्रेष्ठा तद्वदीयं तदीय-सरसी तां नाश्रयेत् कः कृती॥१०॥]

संसारमें जितने प्रकारके भी साधक हैं, उन सबमें राधाकुण्डके तटपर वास करनेवाले भजनकारी भगवत् भक्त ही सर्वश्रेष्ठ एवं कृष्णके सर्वाधिक प्रिय हैं। जिसका वर्णन इस श्लोकमें किया गया है। सर्व प्रकारके कर्मियोंमें चिदानुसन्धानकारी ज्ञानीजन कृष्णके प्रिय हैं। सब प्रकारके ज्ञानियोंके अपेक्षा ज्ञानविमुक्त भक्त कृष्णके परमप्रिय हैं। सब प्रकारके भक्तों में प्रेमी भक्त कृष्णके प्रिय हैं। सब प्रकारके प्रेमी-भक्तोंके अन्तर्गत व्रजगोपियाँ कृष्णके अतिशय प्रिय हैं जिस प्रकार श्रीराधारानी श्रीकृष्णके प्रिय हैं उसी प्रकार उनका कुण्ड (राधाकुण्ड) भी श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिए जिनकी परम सुकृति संचित होती है, वे अवश्य ही श्रीराधाकुण्डमें वासकर श्रीकृष्णकी अष्टकालीन सेवा करेंगे ॥१०॥

श्रीराधाकुण्ड स्नायीकी सौभाग्य पराकाष्ठा

[कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः प्रेयसीभ्योऽपि राधा
कुण्डं चास्या मुनिरभितस्तादृगेव व्यधायि ।
यत् प्रेष्ठैरप्यलभसुलभं किं पुनर्भक्तिभाजां
तत् प्रेमेदं सकृदपि सरः स्नातुराविष्करोति ॥११॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिना विरचितं श्रीउपदेशामृतदशकं समाप्तम् ।

श्रीराधाकुण्डकी स्वाभाविक महिमा बतलाकर उसके द्वारा साधकके चित्तमें दृढ़ता उत्पन्न करनेके अभिप्रायसे इस ग्यारहवें श्लोककी अवतारणा हुई है। श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णकी प्रियतमा एवं उनकी प्रियाओंमें सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं। मुनियोंने शास्त्रोंमें उसी प्रकारसे श्रीराधाकुण्डके उत्कर्षका वर्णन किया है। केवल साधकोंके लिए ही नहीं, देवर्षि नारद जैसे प्रेमी भक्तोंके लिए भी जो प्रेम अत्यन्त दुर्लभ है, वही प्रेम श्रीराधाकुण्ड अपनेमें भक्तिपूर्वक स्नान करने वालोंको सहज ही प्रदान करते हैं।

इसलिए श्रीराधाकुण्ड ही समस्त भजन प्रयासियों-के लिए वासयोग्य स्थान है। अप्राकृत जीव, अप्राकृत व्रजमें, अप्राकृत गोपीदेह प्राप्त कर श्रीराधाकुण्डमें अपनी गुरुरूपा सखीके कुञ्जमें दास्यदासी भावसे निवास करके बाहरसे नामाश्रयपूर्वक श्रीकृष्णकी अष्ट-कालीय सेवामें श्रीमतीराधिकाकी परिचर्या करें—यही श्रीचैतन्य चरणाश्रित व्यक्तिकी भजन चातुरी है ॥११॥

आनन्दवृद्धये श्रीमद्गोस्वामि-वनमालिनः ।
तथा श्रीप्रभुनाथस्य सुखायात्म-निवेदिनः ॥
स्वस्य भजन-सौख्यस्य समृद्धि-हेतवे पुनः ।
भक्तिविनोद-दासेन श्रीगोद्रुमनिवासिना ॥
प्रभोश्चतुःशताब्दे च द्वादशाब्दाधिके मृगे ।
रचितेयं सिताष्टम्यां वृत्तिः पीयूषवर्षिणी ॥

॥ श्रीश्रीगोद्रुमचन्द्रार्पणमस्तु ॥

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीकृष्णका आविर्भाव

जिनके चरणकमलोंमें ब्रह्मा, शिव इन्द्र और वरुण आदि देवता नम्रतापूर्वक बड़े प्रेमसे अपने मणिमय मुकुटोंको पृथ्वी पर टेककर वन्दना करते हैं; आज उन्हीं पूर्ण पुरुष नटवर नागर रसिक शेखर श्रीकृष्ण भगवानकी आविर्भाव-तिथि है। "अवतरणमवतारैः" —वैकुण्ठसे भगवान्‌के अवतरणको अवतार कहा जाता है। भगवान सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। वे समग्र ज्ञान, वैराग्य यशः श्री, ऐश्वर्य और वीर्यवान् हैं। वे सर्वथा अचिन्त्यस्वरूप और निखिल कल्याण-गुण-वारिधि हैं। मनुष्यके जन्म और कर्ममें एवं भगवानके आविर्भाव और लीलामें बहुत ही अन्तर है। इस लिये श्रीकृष्ण भगवानने श्रीगीताजीमें कहा है—

"जन्मकर्म मे दिव्यं" (गीता ४।५)

—मेरा जन्म और कर्म दिव्य अर्थात अलौकिक है; लोकातीत सर्वथा अप्राकृत-स्वरूप है। जो श्रीभगवान के जन्म और कर्मको जीवोंके समान मानते हैं, वे मूढ़ और असुर हैं। श्रीव्यासदेवजीने असुरों को मोहित करनेके लिये महाभारतमें मौषल पर्व और स्वर्गारोहण पर्वमें लिखा है—

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ॥भा०११॥

द्वापर युगका अवतार चतुर्व्यूहात्मक श्रीविष्णुका है। उनका रूप श्यामवर्ण पीतवसनधारी और चतुर्भुज है, उनका अविर्भाव श्रीदेवकी देवीके गर्भ से है जो कि ऐश्वर्यात्मक भाव हैं। लेकिन स्वयं भगवान श्रीव्रजेन्द्रकुमारका अविर्भाव माधुर्य भावात्मक है।

पूर्ण भगवान कृष्ण व्रजेन्द्रकुमार।
गोलोके व्रजेरसह नित्य विहार॥
ब्रह्मार एक दिने तिहों एक वार।
अवतीर्ण हञाँ करेन प्रकट विहार॥
चै: च: आदि ३।५

गोलोक में पूर्ण भगवान व्रजेन्द्रकुमार श्रीकृष्णजी की नित्यलीला चल रही है। वे श्रीब्रह्माजीके एक दिन में केवल एक बार मर्त्यलोकमें अपने धाम और परिकरोंके साथ अवतीर्ण होकर लीला करते हैं।

जब पूर्ण भगवान श्रीकृष्णजीको अवतीर्ण होने की इच्छा हुई, उस समय संयोगवश युगावतारका भी समय आ गया—

अतएव विष्णु तखन कृष्णेर शरीरे।
विष्णु द्वारे कृष्ण करे असुर संहारे॥
चै: च: आदि ८।२२

अतएव विष्णु भगवानने श्रीकृष्णजीके अङ्गमें प्रवेश किया था। इसीलिये श्रीकृष्णजीने असुर-वधकी लीला आदि उसी विष्णु द्वारा की थी और आप स्वयं लीला रसमें निमग्न थे। आप स्वयं योग मायामें समावृत्त होकर व्रजमें विहार करते थे। स्वयं भगवानका कार्य असुर-वध आदि नहीं है। असुर-वध तथा जगत् पालनका कार्य विष्णु भगवानका है।

श्रीवसुदेव-नन्दन—वासुदेव और श्रीनन्दनन्दन—श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंके अविर्भावमें वैशिष्ट्य है। श्रीवासुदेवका अविर्भाव दिव्य वस्त्र, माला और मुकुट आदिके साथ हुआ था तथा श्रीनन्दनन्दनका अविर्भाव एक साधारण मनुष्यके समान हुआ था।

भगवानकी जो लीला ठीक मनुष्यकी क्रियाओंकी भाँति होती है, वह माधुर्यात्मक लीला है तथा जो लीला मनुष्यकी क्रियाओंसे बहुत ऊपर उठी हुई अलौकिक होती है, वह भगवानकी ऐश्वर्यात्मक-

लीला है। इस प्रकार देवकीनन्दन—वासुदेवजी माधुर्य-विग्रह स्वयं भगवान यशोदानन्दन श्रीकृष्णके ऐश्वर्य प्रकाश हैं। यशोदानन्दन अवतारी परतत्त्व हैं और देवकीनन्दन श्रीवासुदेव अवतार-तत्त्व हैं। यशोदानन्दन स्वयंरूप भगवान कृष्ण सदा ही द्विभुज रहते हैं, कभी चतुर्भुज नहीं होते। वे केवल वृन्दावनमें नित्यकाल गोपियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं—

द्विभुजः सर्वदा सोऽत्र न कदा चित् चतुर्भुजः।
गोप्यैकया युक्तस्तत्र परिक्रीडति नित्यदा॥
(लघुभागवतामृत)

तत्त्वकी दृष्टिसे दोनों अभिन्न होने पर भी श्रृङ्गार रसकी दृष्टिसे यशोदानन्दन श्यामसुन्दरकी देवकी नन्दन श्रीवासुदेवसे उत्कर्षता है—

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥
(भक्तिरसामृत सिन्धु)

श्रीवसुदेवनन्दन वासुदेव कंस कारागार, मथुरामें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए सर्वथा अलौकिक रूपमें आविर्भूत हुए थे। परन्तु नन्दनन्दन श्रीकृष्ण नरलीलाके अनुरूप ही यशोदाजीके गर्भसे द्विभुजा-शिशुके रूपमें जन्म-ग्रहण जैसी लीला दिखलाये थे। यही नहीं जन्मलीलाके पश्चात् व्रजेश श्रीनन्द महाराजने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवा करके स्वस्तिवाचन, जातकर्म और देवता-पितरोंका अर्चन—आदि करवाये थे—

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा॥
(भा० १०।५।२]

यशोदानन्दन श्रीकृष्णके आविर्भाव के सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत १०।३।४७ की टीकामें श्री श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जी लिखते हैं— 'यदैव देवकी कृष्णं सुषुवे, तदैव यशोदापि कृष्णं सुषुवे तदनन्तर समये योगमायाञ्च सुषुवे इति" अर्थात् जिस समय कंस-कारागारमें श्रीदेवकीजीने श्रीकृष्णको प्रसव किया, ठीक उसी समय गोकुलमें श्रीयशोदादेवीने भी श्रीकृष्ण (स्वयंरूप) को प्रसव किया। फिर कुछ देर बाद योगमायाको भी प्रसव किया। श्रीकृष्ण यशोदाके नित्यपुत्र हैं और उनका आविर्भाव मनुष्य जैसा केवल माधुर्ययुक्त है। व्रजेन्द्रनन्दन केवल व्रजमें माधुर्यभावसे विलास करते हैं।

मथुरामें ऐश्वर्यभाव और माधुर्यभाव मिश्रित है। देवकी और वसुदेवमें ऐश्वर्य प्रधानभाव होनेसे उनको भगवानकी वात्सल्यलीला और बाल्य लीलाकी माधुरीके दर्शन नहीं मिले।

अनन्त स्वरूप भगवानका यह आनन्द-स्वरूप ही सर्वोत्तम स्वरूप है।

आज उन्हीं रसिक शेखर नवनागर नटवर लीला पुरुषोत्तम श्रीव्रजेन्द्र नन्दनकी परम पवित्रतम आविर्भाव-तिथि है। यदि कोई उनकी सेवा प्राप्त करना चाहे तो उसे श्रीनन्द-यशोदाकी सेवा करनी चाहिये। और उनका गुणगान करना चाहिये।

श्रीयशोदादेवी निखिल आनन्द-रस-समुद्र-स्वरूप एक पुत्रको प्रसव करके आनन्दके मारे अपने-आपको भूल गयी तथा सारी रात इसी भावमें डूबी रही। अरुणोदयके समय जब भगवान शिशुलीला करते हुए रोनेलगे, तब निकट सोयी हुई गोपियोंकी नींद टूट गयी। फिर वे सभी श्रीयशोदाके उस अतीव सुन्दर नवजात शिशुको देख कर बड़ी विस्मित हुईं और बोलीं—'सखियों! देखो तो सही, यशोदाको कैसा सुन्दर लाल हुआ है, मानो कोई इन्द्र नीलमणिका टुकड़ा है अथवा कोई अतीव सुन्दर नील-कमल है। इसके अपूर्वरूप-छटासे सारा घर आलोकमय हो रहा है। इसके कंठकी ध्वनि तो कोकिलके कंठसे भी सुमधुर है। यह हमारे हृदय और नेत्रको बरबस अपनी ओर खींच रहा है--ऐसा कहते-कहते उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी।

गोपियोंकी इस प्रकार कोलाहल सुनकर यशोदाजीकी भी नींद टूट गयी। वे अपनी गोदमें अपूर्व रूपवान शिशुको देखकर प्रेमसे गद्-गद् हो गयीं तथा उनकी आँखोंसे भी प्रेमाश्रु झरने लगे। वे मन ही-मन कहने लगी—'अहो! मैं क्या कहूँ? क्या करूँ?"

यशोदादेवीको पुत्ररत्न पैदा होनेकी खबर गोष्ठभरमें हवाकी भाँति सर्वत्र ही क्षणभरमें फैल गयी। गोपलोग आनन्द-सागरमें डूब गये। कुछ लोग विविध प्रकारके उपहार लाने लगे, कुछ प्रेमसे नृत्य करने लगे, कुछ मधुर स्वरसे गाने लगे। इस प्रकार नन्द महाराजके भवनमें भारी भीड़ हो गयी। उनके घरमें दूध दधि और मक्खनकी कीचड़ हो गयी। कोई-कोई दान करने लगे, कोई-कोई शिशुरूपी मूर्त्तिमान परब्रह्मका दर्शन करने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी कहते हैं कि श्याम-सुन्दरकी ये प्रेमी गोप-गोपियाँ धन्य हैं। श्रीनन्द और श्रीयशदामैया धन्य हैं।

प्रेमसे बोलो, श्रीयशोदादुलाल कन्हैयालालकी जय।

—श्रीहरिकृपादास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री

रूसी भाई और उनकी स्पुटनिक

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ७, संख्या ३, पृष्ठ ६ से आगे]

यदि आप भगवानको साक्षात् आमने-सामने देखना चाहते हैं, तो ऐसा भी हो सकता है और भगवान् आपकी इच्छानुसार—'देखो, मैं आगया—' ऐसा कह भी सकते हैं; क्योंकि इतिहासमें इसके असंख्य प्रमाण भरे पड़े हैं। आप तो नवयुवक अथवा प्रौढ़ होंगे, आपकी तो बात ही अलग रहे, बालक ध्रुव केवल पाँच वर्षकी अवस्था में ही देखना चाहा था। उसने कठोर तप करके भगवान्को प्रसन्न कर लिया। भगवान् साक्षात् रूपमें उसके सामने खड़े होकर बोले—'देखो, मैं आ गया। तुम जो कुछ माँगना चाहो, माँगो मैं तुम्हें सब कुछ देनेके लिये प्रस्तुत हूँ।'

क्या आप भगवान्के दर्शनोंके लिये पाँच वर्षके छोटेसे बालक ध्रुवकी भाँति तपस्याके लिये तैयार हैं? आपलोग आजकल जिस प्रकार आकाशमें उड़ने के लिये तत्पर हैं और उसके लिये कठोर परिश्रम कर रहे हैं, वैसी ही तत्परतासे उचित रूपमें तपस्या करें तो भगवान् निश्चय ही आपको दर्शन देंगे।

जिस समय आपके देशके बड़े-बड़े नेतागण हमारे देशमें पधारे थे, तब हम लोगोंने उनका स्वागत करने के लिये कितना प्रयास किया था, वह आपको निश्चय ही मालूम होगा। उसी प्रकार आपने भी हमारे देशके नेताओंका बड़े प्रेम और लगनके साथ स्वागत किया था वह भी मुझे भली भाँति मालूम है। अब आप विचार कीजिए, यदि कुछ लोगोंके वोट द्वारा मान्यता प्राप्त एक जन-नेताके लिये हम इतना व्यस्त हैं, तब जो सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डके भोक्ता और स्वामी हैं, उनके स्वागतके लिये हमें कितना उच्चकोटिका प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम योग्य साधन करके भगवान्का स्वागत करनेके लिये प्रस्तुत हो जायेंगे तो भगवान् अवश्य-अवश्य हमें दर्शन देंगे। तात्पर्य यह कि भगवान्का दर्शन करनेके लिये योग्य भगवद्भक्त बनना पड़ेगा।

भगवान् भक्तवत्सल हैं। इन भक्तवत्सल भगवान् के शुद्धभक्तजन प्रति क्षण उनका दर्शन कर रहे हैं। इसीलिये तो वे आप जैसे भगवान्के विषयमें विश्वास

न रखनेवालोंके कल्याणके लिये अपने प्राणोंकी बाजी तक लगा देते हैं। बड़े-बड़े विद्वान और ऋषि-महर्षि जो भगवान्‌के भक्त हो चुके हैं, उन्होंने केवल अन्ध-विश्वास से ही भगवान्‌का गुणगान नहीं किये हैं, बल्कि यथार्थ एवं सत्य अनुभव तथा साक्षात् दर्शन करके ही उन्होंने वैसा लिखा है। ऐसी अनुभूतिकी योग्यता आपके अन्दर भी मौजूद है। यदि आप भी उस योग्यताका विकास करना चाहें तो उसे क्रमशः विकसित कर एक दिन भगवद्दर्शन कर सकते हैं।

आपको शायद यह बात मालूम भी नहीं होगी कि भगवान्‌की सृष्टिमें कितनी ही ऐसी अजर-अमर जीवात्माएँ हैं, जिन पर भौतिक काल या जन्ममृत्यु का प्रभाव नहीं पड़ता। ये मुक्त जीवात्माएँ बिना किसी स्पुटनिकके सहारे ही समस्त ग्रहोंमें समस्त नक्षत्रोंमें, समस्त लोकोंमें स्वच्छन्द रूपसे आवागमन करती हैं। देवर्षि नारदजी भी ऐसी ही एक अजर-अमर मुक्त जीवात्मा हैं, जो सब समय यत्र-तत्र-सर्वत्र गमनागमन करते रहते हैं। इस ब्रह्माण्डमें भगवान्‌की जो वाणियाँ या संदेश प्रचारित हैं, वे प्रायः सभी श्रीनारदजी और उनकी शिष्य-परम्परासे प्राप्त हैं। कभी तो भगवान् स्वयं भी अवतीर्ण होकर वैकुण्ठ-वाणीका श्रवण कराते हैं। बड़े-बड़े आचार्य-गण इन भगवत्-वाणियोंको परम्परासे अनुभव करके उन्हें जगत्‌में क्रमशः प्रकाशित रखते हैं। प्रस्तुत युग में श्रीरामानुजाचार्य एवं अन्तमें स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इस भूमण्डल पर अवतीर्ण होकर भगवत्-वाणीके रूपमें साक्षात् दर्शन दे रहे हैं। यदि कोई भगवान्‌को सर्व प्रथम अपने कानोंसे देखनेका प्रयास करे तो वह आगे चलकर अवश्य ही अपनी आँखोंसे भी भगवद्दर्शन कर सकता है।

आपलोग तो केवल सर आइजक न्यूटन आदि मनिषियोंकी ही पुरानी पोथियोंको पढ़ते है। परन्तु यह एकदेशीय विचार है। आप उपर्युक्त आचार्योंके ग्रन्थोंको पढ़ कर उनके अनुभवोंको समझनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते। आप एक ही तरफ झुक गये हैं और दूसरी तरफको बिना सोचे-विचारे—उसके सम्बन्धमें बिना कुछ अनुभव प्राप्त किये ही बिलकुल झूठ बतलानेका दावा करते हैं—यह विचार आप जैसे विद्वानोंके लिये नितान्त अनुचित है। ऐसा कहना या ऐसी धारणा बनाना तो मूर्खोंकी ही शोभा देती है। जब आप शरीर और आत्माका मौलिक तत्त्व यथार्थ रूपमें समझ पायेंगे, तभी आप यह अनुभव कर सकेंगे कि बड़े-बड़े आचार्योंके दान किस श्रेणीके हैं। इसलिये मैं आप लोगोंको उदीयमान बालक ही समझता हूँ। आगे चलकर जब आप लोग मनुष्य जीवनका पूर्णत्व प्राप्त कर लेंगे, उसी समय आप उन पुरानी पोथियों (गीता, भागवत, वेद उपनिषद आदि ग्रन्थों) का आदर कर सकेंगे।

मुझे इस बातको सुनकर खुशी हुई कि आप यह मानते हैं कि विज्ञानकी प्रगति अभी तक अपूर्ण है और उसे अभी बहुत आगे बढ़ना है, समझना है, सीखना है। इस दशामें आप भगवान्‌को कैसे जान पायेंगे। आप तो विज्ञानकी सहायतासे रातमें सूर्य को भी नहीं देख सकते; फिर आप अज्ञानियोंको अज्ञानरूपी रातमें अपने जड़-विज्ञानकी सहायतासे भगवद्दर्शन कैसे करा सकते हैं? जैसे सूर्य दिन-रात सब समय वर्तमान रहता है और सब समय कहीं न कहीं अवश्य देखा जाता है, फिर भी अँधेरी रात उसे कोई भी देख नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार मूर्ख अज्ञानी माया अन्धकारमें भगवान्‌के दर्शनोंसे चिरकाल से ही वंचित हैं और वंचित रहेंगे। जैसे जड़-वैज्ञानिकोंकी लाख धमकीसे भी सूर्य आधी रातमें उदित नहीं होता है, वैसे ही अभक्त सम्प्रदायकी आज्ञासे भगवान्—"देखो, मैं इधर हूँ।" ऐसा कह कर दर्शन नहीं दे सकते। वे जड़ वैज्ञानिकोंकी धमकियोंसे ऐसे प्रस्ताव कदापि राजी नहीं होते हैं। स्वेच्छासे कृपा कर दर्शन देते हैं। वे अभक्तोंके चपरासी नहीं हैं, जो कहा और झटसे डरके मारे भगवान् उनके हुक्मोंका पालन करने के लिये दौड़ आवें।

भगवान्‌के अस्तित्वके सम्बन्धमें ठोस प्रमाण हैं। भगवान् एक हैं। जैसा कि आप समझते हैं कि भगवान् अनेक हैं—यह सम्पूर्ण गलत धारणा है। भगवान्‌के अनेक होनेसे कोई अर्थ नहीं निकलता। भगवान् एक होते हुए भी सबके लिये हैं। आपका भगवान् और मेरा भगवान् एक ही हैं। भगवान् एक होते हुए भी भाव और रसके तारतम्यसे अनेक रूपों में प्रकाशित हैं। जड़ विज्ञानको अभी बहुत आगे बढ़ना पड़ेगा, तब कहीं जाकर भगवान्‌की शक्ति और भगवान्‌के व्यक्तित्वका वह परिचय पा सकेगा। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण पराक्रम, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण सौन्दर्य, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्यके एकमात्र अधिकारी जो भगवान् हैं, वे अपूर्ण जड़-विज्ञानकी आलोचनाके विषय नहीं हैं। परन्तु जब जड़-विज्ञान की समाप्ति करके आप लोगोंमें ब्रह्म-जिज्ञासा उत्पन्न होगी—अर्थात् आप लोगोंके हृदयमें जब यह प्रश्न उठेगा कि संसार क्या है? जीव क्या हैं? ब्रह्म कौन हैं? इस जगतमें जीव क्यों आते हैं? उनकी यह दुःखकी स्थिति क्यों है? वे कैसे यथार्थ सुखी हो सकते हैं? ब्रह्मको कैसे प्राप्त किया जा सकता है?—तभी आप लोग सच्चे विज्ञानकी कक्षामें प्रवेश कर पायेंगे तथा उसी समय भगवान्‌का नाम, रूप, गुण और उनकी लीला-कथाएँ यह सब आप जैसे व्यक्तियोंकी चर्चाका एकमात्र विषय होगा।

भगवद्‌विज्ञान मनुष्योंके साधनका फल नहीं है; वह भगवान द्वारा रचित है। इसलिये भगवद्‌ज्ञान पूर्ण विज्ञान है। भगवद् विज्ञानको जान लेने पर सम्पूर्ण-ज्ञानका जानना हो जाता है। भगवद्‌विज्ञानकी पोथियाँ पुरानी नहीं हैं। वे सब नित्य-नवीन हैं। ठीक उसी प्रकार जिस तरह आत्मा नित्य-नवीन है। आत्माका भौतिक औपाधिक शरीर पुराना होता है। आप नित्य-नवीन पोथियोंकी पुरानी जिल्दोंकी तरफ न देखिये। मैं आपकी दृष्टि पुरानी कही जानेवाली पोथियोंकी वाणियोंकी ओर आकर्षण करना चाहता हूँ—पुरानी (१) पोथियोंकी जिल्दकी ओरनहीं।

जन्म मृत्युके सम्बन्धमें मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूँ, फिर भी आपको बतला देना चाहता हूँ कि जीवात्माएँ नित्य हैं। उनका जन्म-मरण नहीं होता। हाँ, भौतिक शरीरोंका विभिन्न रूपोंमें परिवर्तन अवश्य हो जाता है। आत्मा चेतन है; परन्तु किसी विशेष कारणसे उनका स्वरूप मायिक स्थूल-सूक्ष्म उपाधियोंसे आच्छादित हो गया है। वह विशेष कारण—भगवद् विस्मृति दूर होने पर उनका चित् शरीर प्रकाशित हो जाता है; तब वे जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिये छूट जाते हैं। चित् शरीर चित् जगत्‌में ही प्राप्त हो सकता है। चिद् जगत इस भौतिक आकाशसे बहुत-बहुत आगे विद्यमान है। वहाँ जन्म मृत्युका कोई झंझट नहीं है। परन्तु आप तो अभी स्पुटनिक द्वारा भौतिक आकाश को ही पार नहीं पा सके हैं। फिर चिदाकाशमें उस स्पुटनिक द्वारा कैसे पहुँच सकेंगे? मैंने आपके पास जो Easy Journey to other Planets भेजा है, उसमें इस विषय का संक्षिप्त विवरण पा सकेंगे। उसके पश्चात् कुछ और जाननेकी इच्छा होने पर जिज्ञासा करने पर बहुत कुछ बतलाया जा सकता है।

आप लोग वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा मृत्युके हाथसे बचाकर अपनेको जो अमर बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं, उस विषयमें मैं आपको निरुत्साहित नहीं कर रहा हूँ। एकमात्र मनुष्य जीवनमें ही हम लोग मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रयास कर सकते हैं। परन्तु इस विषयमें आपलोगोंने इस दिशामें जो कदम उठाये हैं—जो चेष्टाकर रहे हैं, वह व्यर्थ है। भौतिक जगतमें आप कहीं जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि पर विजय पा सकते हैं? भौतिक शरीर धारण करके भौतिक नियमोंको तोड़नेकी जितनी ही अधिक चेष्टा करेंगे आपको उतने ही अधिक क्लेश भोगने पड़ेंगे।

यह बात सत्य है कि कुछ दिन पहले न तो एयरोप्लैन थे और न मोटर गाड़ियाँ थी। भौतिक विज्ञान द्वारा आविष्कृत अनेक साधन भी कुछ दिन

पहले विद्यमान नहीं थे। परन्तु साथ-ही-साथ उस समय शिखर-सम्मेलनकी आवश्यकता भी नहीं थी। एक देशसे दूसरे देशमें जानेके लिये किसी प्रकार का रोक-टोक नहीं था। मनुष्य स्वभाविक रूपमें अपनेको भाई-भाई मानते थे। कभी युगयुगान्तरमें लड़ाई भी होती थी, पर आजकल जैसी सब समय ठण्ढी और गरम लड़ाई चालू नहीं रहा करती थी।

आप वैज्ञानिक ढङ्गसे अनेक प्रकारकी औषधियों-का आविष्कार कर रहे हैं या किये हैं, परन्तु आपको ख्याल रहे कि इन औषधियोंके आविष्कारके साथ-साथ अगणित नयी-नयी बीमारियाँ भी पैदा किये हैं। ये नयी बिमारियाँ अत्यन्त जटिल भी हैं। भारतीय इतिहासमें कम-से-कम पहले यत्र-तत्र-सर्वत्र आज जैसी बीमारियाँ नहीं हुआ करती थीं। दूसरी बात वैज्ञानिक पद्धतिसे बनी हुई इन चमत्कारपूर्ण (?) औषधियोंका मूल्य भी इतना अधिक है कि हमारा गरीब देश इसे चुकानेमें असमर्थ है। आजकलकी सभ्यता क्या है मानों भौतिक नियमों और नास्तिक मनुष्योंमें बीच खिंचा-तानी—लड़ाई है। नास्तिक व्यक्ति भौतिक नियमोंके साथ युद्ध करके कभी भी उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। भौतिक नियमसे भौतिक शरीर धारण करनेवाले जीवात्माओंको त्रिताप-क्लेश अवश्य ही भोग करना पड़ेगा। आप इस बातको निश्चित समझ लें कि नास्तिक विश्वमें कभी भी सुख और शान्ति नहीं हो सकती है, जैसा कि आपलोग चाहते हैं।

यथार्थ भगवद्भक्त निष्क्रिय नहीं होते। आपको भगवद्भक्तोंके पवित्र जीवन-चरित्रके सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं है, अन्यथा ऐसा कदापि नहीं कहते। भगवद्भक्तोंका एक सेकेण्ड भी व्यर्थ नहीं जाता। उन्हें आहार-निद्राके लिये भी बहुत ही अल्प समय मिलता है। भगवानके विशुद्ध भक्तजन दिन-रात चौबीस घण्टों सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डके चरम कल्याणका केवल चिन्तन ही नहीं करते, अधिकन्तु दिन-रात उसीके लिये ठोस रचनात्मक क्रियाओंमें ऐसे तीव्रगतिसे लगे हुए हैं कि आप उसकी कल्पना ही नहीं कर सकते, ठीक वैसे ही जैसे मूर्ख व्यक्ति किसी बिजलीके पङ्खे को—जो अपनी अन्तिम चालसे घूम रहा हो—निष्क्रिय समझता है। भगवद्भक्तोंकी विशेषता यह है कि वे इस वर्तमान जीवनका ही नहीं, अधिकन्तु भविष्यमें जो जन्म होंगे, उन जन्मोंमें भी मनुष्यादि प्राणियोंका कैसे कल्याण हो सकता है—उन्हें सुख-शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है—इसका चिन्तन करते हैं तथा उसके लिये निरन्तर कार्यमें तत्पर रहते हैं। उन्हें प्रतिष्ठा और तालियोंकी गड़-गड़ाहटकी आवश्यकता नहीं होती। उनका आपलोगों जैसा कोई खास या सीमित देश नहीं होता—सारा विश्व ही उनका अपना है। वे जिस देशमें पैदा होते हैं, केवल उसी देशके लिये ही नहीं, अधिकन्तु विश्व-के सभी देशोंके मनुष्य और पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग—सबके लिये कल्याण-कामना करते हैं और उसके लिये क्रियात्मक योजनाओं पर अमल भी करते हैं। भग-वद्भक्त ही यथार्थ रूपमें चाहते हैं कि सबलोग किस प्रकार जन्म-मरणके दुःखसे छुटकारा पा जाँय, किस प्रकार वे अमर हो जाँय, और किस प्रकार वे नित्य सुख और शान्तिको प्राप्त हो जाँय।

यदि आप हमारी पुरानी पोथिओं (वेद-पुराण आदि ग्रन्थों) को निरपेक्ष होकर देखें तो आपको यह पता चलेगा कि इन पुरानी पोथियोंमें कितने नित्य-नवीन संवाद हैं। भारतसे ही आपको शान्तिका अमूल्य सन्देश मिल सकता है। भारतीय पुरानी पोथियोंके माध्यमसे ही पाश्चात्य देशोंने भारतीय सम्पत्तिका बहुत कुछ लाभ उठाया है और आगे भी उठा सकेंगे। परन्तु यह खेदकी बात है कि वर्तमान भारतीय नेताओंकी इस विषयमें कोई रुचि नहीं है। वे तो पश्चिमकी चाकचिक्यपूर्ण भीषण संहारकारी सभ्यतासे मोहित हैं।

हमलोग आपको बतलाना चाहते हैं कि हमलोग सात्वत सम्प्रदायके हैं। सात्वत सम्प्रदाय आपको

वैज्ञानिक प्रगतिमें रोड़े नहीं अटकाना चाहती। परन्तु इतना ही अनुरोध है कि हमारी पुरानी पोथियोंसे आपलोग नित्यकल्याणकारी लाभ अवश्य उठाइये। नित्यकल्याण ही आपके जीवनका भी मुख्य ध्येय होना चाहिए।

जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मैं आप रूसी भाइयोंका बहुत ही सम्मान करता हूँ; क्योंकि आपलोग कम-से-कम भौतिक साधनोंको यथासाध्य उपयोगमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु हमारे देशके अधिकांश भाई अपने देशकी अपनी संस्कृति आदि सम्पत्तिको भी छोड़ बैठे हैं। दूसरी तरफ आप लोगोंकी नकल भी पूरी तरहसे नहीं कर पाते। यदि भारतीय सरकार आपके सहयोगसे भौतिक उन्नति कर रही है तो आपलोग भी भारतीय सात्वत सम्प्रदायसे सहायता लेकर पारमार्थिक साधनमें प्रगति कर सकते हैं। इसके लिये जो कुछ भी प्रयत्न आप करेंगे,वह आपके लिये लाभदायक ही सिद्ध होगा। इस पारमार्थिक साधनके सहारे आपकी भौतिक साधना भी पूर्णतया विकसित होगी तथा मानव मात्रके भौतिक सुखका साधन होगी। हम दोनोंमें पारस्परिक आदान-प्रदान अवश्य होना चाहिए। मैं तो आपको मित्र ही समझता हूँ; इसलिये मैं परमेश्वर-से सदैव आपकी मङ्गल कामना किया करता हूँ। क्योंकि मनुष्य जीवनमें ही यदि चित्त सम्पर्क नहीं बना सके तो फिर मनुष्य जीवन व्यर्थ ही चला गया। स्पुटनिक द्वारा आप चाहे चन्द्रलोकमें जाइये अथवा ब्रह्मलोकमें,यदि मनुष्य जीवनमें भगवत्लोक-में पहुँचनेकी चेष्टा नहीं की गयी तो सब कुछ विफल ही समझिये।

मैं आपको धन्यवाद दे रहा हूँ कि आप हमारे परस्पर पत्र-व्यवहारको Back-To-Godhead पत्रिकामें प्रकाशित करनेकी अनुमति प्रदान की है। मैं भी आपसे निवेदन करूँगा कि आप भी कृपया इसे अपनी पत्रिकामें प्रकाशित करें।

—श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी

जन्माष्टमी

'जन्माष्टमी'–शब्दसे श्रीकृष्णकी अविर्भाव तिथि-का ही बोध होता है। यद्यपि अष्टमी तिथिमें दूसरे-दूसरे अनेक देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और मनु-ष्यादिके जन्म-ग्रहणकी चर्चा सुनी जाती है, तथापि 'जन्माष्टमी' शब्द प्रसिद्ध रूपसे श्रीकृष्णके आवि-र्भावको ही लक्ष्य करता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि भगवद्वस्तुका जन्म और मरण नहीं होता। अजन्मा का जन्म, कालातीत भगवद्वस्तुका किसी भी काल-विशेषमें आविर्भाव—अत्यन्त सिद्धान्त-विरुद्ध जान पड़ता है। क्योंकि अजन्माका कभी जन्म सम्भव नहीं है। फिर जन्म लेने वाली वस्तु भी कभी अजन्मा नहीं हो सकती। किसी किसीका कहना है, कि जब कृष्ण किसी विशेष समयमें उत्पन्न हुए तो उन्हें स्वयं भगवान् नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भगवान परब्रह्म अनादि सिद्ध हैं, अजन्मा हैं निरा-कार हैं—परन्तु श्रीकृष्णका द्वापरके अन्तमें आविर्भाव होना सुना जाता है, उनका रूप भी है। फिर वे भगवान कैसे हो सकते हैं?

इन सब शंकाओंका समाधान क्या है? इन सभी शंकाओंकी मीमांसा प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्-भागवत और श्रीगीतोपनिषद्में भलीभाँति दी गयी है। श्रीकृष्ण अनादि सिद्ध हैं, उनकी जन्मलीला भी अनादि है। वे अपनी इच्छासे ही संसारके योग्य जीवके हृदयमें बार-बार इस जन्मलीलाका आविष्कार करते हैं। श्रीकृष्णकी जन्मतिथिके विषयको पशु-पक्षी-कीटादि और अज्ञ मनुष्य समझ नहीं सकते श्रीमद्भागवत (३।२।१५) में कहा गया है—

स्वशांतरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपिजातो भगवान् यथाग्निः ॥

भगवदाश्रितोंके दो रूप हैं—शांतस्वरूप भगवद्-भक्त और तदितर अशान्त स्वभाव (भगवद्विमुख असुरगण)। अशान्त स्वभाव असुरगण जिस समय उन शान्तस्वरूप भगवद्भक्तों पर अत्याचार करने लगे, तब चराचर जगत्के स्वामी परतत्त्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके प्रति करुणाभावसे द्रवित हो गये और प्राकृत जन्मसे रहित होने पर भी जैसे काष्ठमें अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार अपने व्यूह और अंशलीलावतार आदिके साथ अपने लोक से संसारमें अवतीर्ण हुए। जैसे अरणी (वह विशेष लकड़ी जिसे मथकर यज्ञके लिये आग प्रकट की जाती है।) या पत्थर में आग सदा ही वर्तमान होती है परन्तु किसी कारणवश (रगड़ या चोटसे) उससे आग प्रकट होती है, वैसे ही श्रीकृष्ण भी किसी विशेष समयमें (वैवस्वत मन्वन्तरके अठाईसवें चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें अपनी लीलाका विस्तार करनेके लिये—अपनी भक्त मण्डलीपर अनुग्रह करने के लिये) जन्म आदि लीलाएँ प्रकट करते हैं।

संसारमें रहनेवाले प्रेमी भक्तोंकी विरहाग्निको शान्त करनेमें स्वयं भगवान्के अतिरिक्त और कोई भी समर्थ नहीं है। श्रुतदेव और बहुलाश्व आदि भक्तोंको दर्शन द्वारा आनन्द प्रदान करनेके लिये तथा दानव मण्डलीका ध्वंश करके श्रीवसुदेव आदि प्रिय-जनों पर कृपा करनेके लिये—ये ही भगवान्की जन्म लीलाके आविष्कारके दो मुख्य कारण हैं। पृथिवी का भार हरण करनेके लिए ब्रह्मादि देवताओंकी जो प्रार्थना है, वह उनके आविर्भावका गौण कारण मात्र है। मुख्य कारणके अभावमें पूर्णावतारके समय भू-भार-हरण आदि कामोंके लिए अंशादिके भी पृथक अवतरणका प्रयोजन नहीं होता। जब चक्रवर्त्ती सम्राट् विजयके लिए निकलते हैं, उस समय जैसे माण्डलिक राजा भी पीछे-पीछे चलते हैं, वैसे ही जब श्रीकृष्ण संसारमें अवतीर्ण होते हैं, तब उनके विलास वैकुण्ठनाथ, उनके व्यूह, अंश पुरुषादि अव-तार, राम-नृसिंह-वराह-वामन और नर-नारायणादि भी अंशी श्रीकृष्णके साथ-जगत्में अवतीर्ण होते हैं। इसीसे श्रीकृष्णके आविर्भावके समय श्रीवृन्दावनमें उन अवतारोंकी लीलाएँ भी हुई हैं। वृन्दावनमें ब्रह्माको ब्रह्माण्डनाथके साथ जो अद्भुत ब्रह्माण्ड-कोटि दिखाया गया था, वह वैकुण्ठनाथकी ही लीला थी। मथुरा और द्वारका आदिमें वासुदेवादिके रूपमें वासुदेवादिकी लीला प्रकाशित हुई है, वह व्रजमें भी बाल्यलीला द्वारा दिखाई गयी थी। जैसे सुदामाके गरुड़ होने पर श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूपमें और द्वादश आदित्यके प्रणाम करने पर दशबाहुके रूपमें प्रकाशित हुए थे। श्रीकृष्णने शेषशायीके रूपमें मथुरा-मण्डलमें पुरुषावतारकी लीलाओंको भी प्रकट किया था उन्होंने अपनी लीलासे जिन रामादि रूपोंका आविष्कार किया था, वे सब श्रीमूर्त्तियाँ आज भी मथुरा मण्डल में विराजमान हैं। गौओंके दूधके द्वारा क्षीरसमुद्रका प्रकाश किया था और गोप बालकोंको देव-असुर बनाकर स्वयं अजितके रूपमें श्रीकृष्णने क्षीरसागर का मन्थन किया था। जैसे महाग्निसे सैकड़ों-हजारों चिनगारियाँ निकल कर फिर उसीमें समा जाती हैं, वैसे ही अंशी श्रीकृष्णके अंशस्वरूप असंख्य अवतार उनसे निकल कर फिर अंशीके रूपमें ही एकताको प्राप्त होते हैं। जैसे ग्राम और नगर आदिको जलाने के लिए प्रदीप और आगकी ढेरीकी शक्ति बराबर होनेपर भी आगकी ढेरीसे ही जाड़ेका नाश होनेसे अतीव सुख मिलता है, वैसे ही पुरुषादि अवतारके द्वारा जगत्का भार हरण आदि कार्य सिद्ध होनेपर भी अंशी श्रीकृष्णके बिना प्रेमी भक्तोंको सुख नहीं मिलता।

भौतिक पदार्थोंमें विरुद्ध गुणसमूह सम्भव न होनेपर भी अप्राकृत वस्तुमें एक ही समय परस्पर विरुद्ध-गुणोंका समावेश दिखाई देता है। यह अप्रा-कृत तत्त्वकी एक विशेषता है। अतएव अप्राकृत भग-वान्के अजन्म और जन्ममें विरुद्ध-भावकी आशंका करना उचित नहीं है। श्रुतिमें भी भगवान्के इस विरुद्ध गुणका उल्लेख है। जैसे—'आजायमानो

बहुधा विजायते ।' श्रीगीतामें (४।६ में) भी श्रीभगवान् कहते हैं—"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्वमधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।" टीका—"स्वां शुद्धसत्त्वात्मिकां प्रकृतिमधिष्ठाय स्वीकृत्य विशुद्धोर्जित-सत्त्वमूर्त्या स्वेच्छाभावतरामीत्यर्थः ।" (श्रीधर)

श्रीभगवान्की जन्मादि लीला स्वरूप शक्तिका कार्य है । स्वरूप-शक्ति स्वरूप से भिन्न नहीं है, स्वरूपके ही अधीन है । स्वरूपकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली शक्ति-विशेष ही स्वरूप-शक्ति है । श्रीभगवान् अपनी शुद्ध सत्त्वात्मिका स्वरूप-शक्तिके द्वारा स्वेच्छासे जन्मादि लीलाका विस्तार किया करते हैं । उनके स्वरूप शक्तिसे प्रकटित जो सब पारिषद हैं, वे लोग भी उनकी ही इच्छासे उनकी लीलाके सहायक के रूपमें जगत्में अवतीर्ण होते हैं । जिस शक्ति द्वारा श्रीभगवान् जगत्में अवतीर्ण होते हैं वह उनकी स्वरूप शक्ति है जो उनकी सम्पूर्ण इच्छा को पूर्ण करती है । जिस शक्ति द्वारा जीवका जन्मादि होता है, वह शक्ति जीव-स्वरूपसे भिन्न है, जीव जब माया शक्तिसे छुटकारा पाता है, तब उसके जन्मादि की सम्भावना नहीं होती । किन्तु भगवान् जिस शक्ति द्वारा जन्मादि लीलाका आविष्कार करते हैं, वह उनके स्वरूपसे अभिन्न होनेके कारण भगवान्की जन्मादि लीला नित्य और शुद्ध है, वह जीवकी तरह कर्मफलका भोग नहीं है ।

यहाँ पूछा जा सकता है कि यदि भगवान्की जन्मादि-लीला नित्य है, तो भगवान्को सदाके लिए ही जन्मादिके कारण दुःख भोगना पड़ेगा । जीव माया-जालसे मुक्त होनेपर जन्म-मृत्युसे छुटकारा पा सकता है, किन्तु भगवान्के लिए तो ऐसा सम्भव नहीं । इसका उत्तर यह है कि श्रीभगवान् अपनी निरंकुश इच्छासे स्वरूपमें स्थित सच्चिदानन्दमयी स्वरूप शक्तिके द्वारा जन्मादि लीलाका विस्तार किया करते हैं । जैसे भगवान् नित्य हैं, वैसे ही उनकी स्वरूप शक्ति भी नित्य है । फिर भगवान् में क्रीड़ा-विलास करनेकी इच्छा भी नित्य है । अतएव ऐसे नित्य-स्वरूप-शक्ति समन्वित लीला-पुरुषोत्तम श्रीभगवान् नित्यलीला विलासकी इच्छासे नित्य स्वरूप शक्ति द्वारा नित्य जन्मादि लीलाका विस्तार किया करते हैं । इससे उनके नित्य-स्वरूपके नित्य-पारिषद्वर्गका और संसारमें स्थित नित्य-साधक भक्तोंका नित्यानन्दामृताम्बुधि बढ़ता रहता है ।

भगवान् स्वेच्छासे जन्मादि लीलाका आविष्कार करते हैं और जीवोंको कर्मबाध्य होकर जन्मादि लेना पड़ता है, भगवानके स्वरूपसे अभिन्न स्वरूप शक्तिके द्वारा जन्मादि लीलाका विस्तार होता है और जीवका अपने स्वरूपसे भिन्न मायाशक्तिके द्वारा जन्म होता है । जिस शक्तिके द्वारा भगवान्की जन्मादि लीला प्रकाशित होती है, वह शक्ति सच्चिदानन्दमयी है, और जीवका जिस शक्ति द्वारा जन्मादि होता है, वह शक्ति त्रितापमयी है । स्वतन्त्र कृष्णके क्रीड़ा-विलासके लिए स्वरूप शक्तिसे प्रकट होनेवाले परिकर और धामादि के साथ अवतरण होता है, और अस्वतन्त्र जीवको कर्मफल भोगनेके लिए अपने जैसे और भी अनन्त जीवोंके साथ मायाद्वारा निर्मित जगत्-कारागारमें पराधीन होकर आना पड़ता है । अतएव जीवके कर्मफल भोग रूपी जन्म और कर्म एवं निरंकुश इच्छामय क्रीड़ाका आनन्द लेनेवाले भगवान्के अवतरण रूपी जन्मादि लीलाएँ ये दोनों एक नहीं हैं । इसीलिए भगवान्ने अपने श्रीमुखसे कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

यदि कोई यह कहे कि श्रीभगवान्की जन्मादि लीला स्वरूप शक्तिका विलास है, इसे तो मान लिया, परन्तु उनके पारिषदोंकी जन्मादि और तरह-तरहके दुःख कष्टादि की जो बातें सुनाई देती हैं, उससे मालूम पड़ता है कि उनके जन्म और कर्मफलके भोग आदि जीवोंके समान ही हैं । नहीं तो सुखमय भगवान्के साथ अवतीर्ण होनेपर भी उन लोगोंमें

दुःखादिकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? देवकी-वसुदेव का कारागारमें रहना, व्रजवासियोंका कृष्णके विच्छेद से शोक, नन्द-यशोदामें भी सांसारिक माता-पिताकी तरह पुत्रके प्रति अत्यन्त आसक्ति—यह सब क्या है ? जीव अपने स्वरूपमें स्थित होनेसे ही इस आक्षेपके समाधानको अच्छी तरह समझ सकता है । भगवत् पारिषदोंमें सबमें ही स्वरूप शक्तिका वैभव है । उनका जन्मादि भी स्वरूपशक्तिका ही विलास है । श्रीकृष्ण की इच्छासे ही उनकी लीलाके सहायकरूपमें वे जगत्में अवतीर्ण होते हैं । उनके दुःखादिका अभिनय लीलारसास्वादनके लिये ही है । जगत्के समस्त दुःखादिकी तरह वह कर्मफलका भोग नहीं है बल्कि नये-नये भावसे कृष्ण-सेवा-माधुरीकी चमत्कारिताके आस्वादनकी एक विचित्रता मात्र है । प्राकृत पिता-माताकी प्राकृत अनित्य पुत्रके लिये आसक्ति कर्मफल भोग होनेके कारण हेय है—परित्याज्य है । किन्तु नन्द-यशोदाकी नित्य पुत्रके लिये आसक्ति परम उपादेय और अप्राकृत अनुरागियोंके लिये अनुसरण करने योग्य है ।

यहाँ और एक प्रश्न हो सकता है, यदि भगवान् की जन्मादि लीला नित्य है, तो भगवान्के लिये 'अजन्मा' शब्दके प्रयोगकी सार्थकता कैसे हो सकती है ? शास्त्रोंने इस शङ्काका समाधान किया है । शास्त्रों-का कहना है—श्रीकृष्णका गुण सर्वतोभावसे कहा नहीं जा सकता, इसलिये वे 'अनामा' हैं, उनका रूप अप्राकृत है, इसलिये वे अरूप हैं और उनका जन्म सांसारिक पुरुषोंके जन्मकी तरह नहीं है, इसलिये वे 'अजन्मा' कहे जाते हैं । किन्तु यदि इस प्रकार शास्त्रीय विचारको न मानकर 'अनामा' 'अरूप', 'अजन्मा' और 'अकर्त्ता' आदि निर्गुण भगवत्-विशेषण वाचक शब्दोंकी अविद्वत् रूढ़ि वृत्तिको ग्रहण कर अर्थ किया जाय तो भगवानकी स्वरूप शक्तिको अस्वीकार करना पड़ता है स्वरूप शक्तिके सिवा भगवत् शब्द भी निरर्थक है ।

प्राचीन ज्योतिषियोंने विष्णुपुराणके चतुर्थ खण्ड २४ वें अध्यायसे और श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध द्वितीय अध्यायसे श्रीकृष्ण जन्मके समयके ग्रह नक्षत्रों को एकत्र कर जो गणना की थी उसके अनुसार श्रीकृष्णका अवतरण-काल कुछ अधिक पाँच हजार वर्ष होते हैं । वर्त्तमान कलियुगके आरम्भमें अर्थात् बीते हुए द्वापर युगके अन्तमें या इन दोनोंकी सन्धिमें स्वयं भगवान् लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण मथुरा-मण्डल में वासुदेव और देवकीके माध्यमसे आविर्भूत हुए । श्रीवसुदेव और देवकीके पूर्व इतिहाससे यह पता चलता है कि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वसुदेव सुतपा नामक प्रजापति और देवकी पृश्निके नामसे प्रसिद्ध थी । ब्रह्मासे प्रजाकी सृष्टिके लिये आज्ञा पानेपर इन्होंने इन्द्रियोंका संयम कर देवताओंके परिमाणसे बारह हजार वर्ष तक बड़ी श्रद्धाके साथ तपस्या की थी । इनके भक्ति भावित निर्मल हृदयमें चतुर्भुज विष्णुने उदित होकर वर देनेकी इच्छा की । तब इन लोगोंने भगवान्से उन्हींके समान पुत्र माँगा । उसी समय भगवान् उनका पुत्रत्व स्वीकार कर 'पृश्नि गर्भ' के नामसे विख्यात हुए । इसके बाद दूसरे जन्ममें जब 'सुतपा' और पृश्नि कश्यप और अदिति के नामसे आविर्भूत हुए और उस समय भी विष्णु इन्द्रके छोटे भाई वामनके रूपमें उत्पन्न होकर उपेन्द्र और वामनके नामसे विख्यात हुए । वे ही अब तीसरे जन्ममें वसुदेव और देवकी हुए । सर्व साधारणमें प्रसिद्ध इस इतिहासको माननेसे वसुदेवने-देवकीको साधन-सिद्ध मनुष्य-विशेष मानना पड़ेगा । किन्तु श्रीकृष्णके नित्य माता-पिता वसुदेव-देवकी कभी ऐसे साधन-सिद्ध मनुष्य नहीं हो सकते । फिर श्रीवसुदेवादि के पूर्व जन्ममें साधकके रूपमें तपस्या आदिका जो वर्णन है, वह श्रीभगवान्की तरह, अपनी इच्छासे लोक—संग्रहके लिये वसुदेवादिके अंशावतार द्वारा साधक जीवोंमें आवेशके कारण ही होता है—अर्थात् वसुदेवादि नित्य-सिद्ध हैं । उन्होंने कभी भी साधन नहीं किया । फिर भी साधक जीव-विशेषमें अपने अंशसे प्रवेशकर और लोक-संग्रहके लिये साधन किया है और अंश-अंशीके ऐक्यके विचारसे इस प्रकार कहा गया है ।

ब्रह्माके आदेशसे जब देवगण अवतार लेने लगे, तब वसुदेव आदिके अंश, स्वर्गमें स्थित कश्यपादि,

नित्यलीलामें स्थित अंशी वसुदेव आदिके साथ शूर आदि होकर मथुरामें अवतीर्ण हुए। वैकुण्ठपति श्रीनारायण जिनके विलास-मूर्ति हैं, उन लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने मथुरामें अपनी लीला-विस्तार करनेके लिये पहले संकर्षण व्यूहको प्रकट किया। इसके बाद वे अपने शरीरमें स्थित प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामक दोनों व्यूहोंको प्रकट करनेकी इच्छासे विशुद्ध सत्त्व-स्वरूप वसुदेवके हृदयमें प्रकट हुए। उस समय भार-हरण-काल उपस्थित था। पृथिवीका भार हरण करना स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका कार्य नहीं है। अतएव 'देवताओंकी प्रार्थनासे क्षीरोद-सागर-शायी अनिरुद्ध-वसुदेवके हृदयमें विराजमान श्रीकृष्णके साथ मिलकर वसुदेवके हृदयमें विशुद्ध-सत्त्व-वृत्ति स्वरूपिणी श्रीदेवकीके हृदयमें प्रकट हुए,देवकीके वात्सल्यप्रेमके आनन्दामृतद्वारा लालित होकर श्रीकृष्ण देवकीके गर्भमें चन्द्रकी तरह क्रमशः बढ़ने लगे। इसके बाद भाद्रपदकी जन्म-अष्टमी तिथिको बुधवार-के दिन रोहिणी-नक्षत्रमें आधी रातमें देवकीके हृदयसे कंसके कारागारमें आविर्भूत हुए।

श्रीकृष्ण देवकीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होनेपर भी वे संसारी मनुष्योंकी तरह पैदा नहीं हुए। सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्णने विशुद्ध सत्त्व और उसकी वृत्तिरूपा देवकी-वसुदेवके अप्राकृत सत्त्वमें आविष्ट होकर ही जन्मलीलाका आविष्कार किया। इसीसे श्रीमद्भागवतमें (१० २।१६) कहा गया है कि जैसे पूर्व-दिशा आनन्द-देनेवाले चन्द्रको धारण करती है, वैसे ही देवकी देवीने वसुदेवद्वारा वैध दीक्षा विधानमें दिये गये जगन्मङ्गल सर्वांशसे परि-पूर्ण, सर्वमूल-स्वरूप, सर्वसुख-निदान श्रीहरिको मनमें पुत्ररूपसे धारण किया था। वात्सल्य-प्रेमके कारण ही श्रीवसुदेव-देव श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए थे।

श्रीकृष्णका जन्म संसारी मनुष्यों जैसा न होनेका और एक प्रमाण यह है कि पैदा होनेवाले संसारी बच्चे नंगे ही माँके गर्भसे निकलते हैं। किन्तु श्री-कृष्णके आविर्भावके सम्बन्धमें ऐसा वर्णन मिलता है कि वे चतुर्भुज रूपमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर किरीट-कुण्डल आदि तरह-तरहके भूषणोंसे भूषित होकर, घने बालोंसे युक्त होकर पीतवस्त्र धारण कर प्रकट हुए। संसारी बालक कभी भी माताके पेट-से कपड़े और गहने पहन कर पैदा नहीं होते।

श्री भगवान्‌ने इस प्रकार अपने चतुर्भुज रूपमें आविर्भूत होनेका कारण स्वयं बतलाया है। द्विभुज ही उनका स्वरूप है। केवल ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित वात्सल्य-रसके दोनों रसिकोंको पूर्व-जन्मकी याद दिलानेके लिए ही चतुर्भुज रूपमें प्रकट हुए थे।

इसीसे—"भगवानात्ममायया। पित्रो संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥" यहाँ 'आत्ममाया' और 'प्राकृतः शिशुः' ये दो शब्द अप्राकृत द्विभुज रूपको ही उनका स्वरूप-विग्रह प्रमाणित कर रहे हैं। श्रीमन्मध्वाचार्यने महा-संहिताका श्लोक वाक्य लेकर कहा है—"आत्ममायाका अर्थ है—भगवत् इच्छा। प्रकृतिका अर्थ—स्वरूप है। स्वरूपमें व्यक्त होनेके कारण प्रकृति अर्थात् नराकार मूर्ति ही श्रीकृष्णका स्वरूप है।

इस प्रकार कंसके कारागारमें देवकीकी शय्यापर श्रीकृष्णके आविर्भूत होनेपर वसुदेव उन्हें लेकर गोकुलमें यशोदाके घरमें श्रीकृष्णको रखकर और यशोदाकी शैय्यासे योगमायाको उठाकर मथुरा ले आये। यहाँ कोई-कोई प्राचीन भागवत-गण कहते हैं कि कंसके कारागारमें वसुदेवके यहाँ प्रथम व्यूह वासुदेव और गोकुलमें नन्दके घर योगमायाके साथ स्वयंरूप श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए थे। वसुदेवने यशोदाके प्रसूति घरमें जाकर केवल एक लड़कीको ही देखा। वे कंसको धोखा देनेके लिए उसी योगमाया-को लेकर मथुरा लौट आये। इधर वसुदेव भी स्वयं-रूपमें प्रविष्ट हुए।

श्रीकृष्ण यशोदा-नन्दन और देवकी-नन्दन इन दोनों ही नामसे प्रसिद्ध हैं। 'वात्सल्य-प्रेमके कारण श्रीवसुदेव-देवकी और श्रीव्रजराज-व्रजेश्वरी—दोनों जगह श्रीकृष्णका अविर्भाव होनेपर भी व्रजराज-व्रजेश्वरीमें वह वात्सल्य-प्रेम प्रचुर एवं ऐश्वर्यगंध-रहित है।

प्रचार-प्रसंग

झूलन-यात्रा

गत ५ भाद्र, २२ अगस्त, मंगलवार, एकादशीसे लेकर ९ भाद्र २६ अगस्त शनिवार, पूर्णिमा तक ५ दिन श्रीश्रीराधा-विनोद बिहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। सभामण्डप, हिंडोला और श्रीमंदिर नाना प्रकारकी आलोक-मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र, कदली वृक्षों एवं आम्र-पल्लवोंसे सुसज्जित हो रहे थे। नित्य प्रति नयी-नयी झाँकियाँ, विराट संकीर्तन और प्रवचन आदि महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। दर्शकों की बड़ी भीड़ने प्रतिदिन झूलनका दर्शन किया और हरिकथाका श्रवण किया।

यह उत्सव श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूचूड़ा और श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठ, आसाममें भी बड़े धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ है।

श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि

गत ९ भाद्र, २६ सितम्बर, शनिवार पूर्णिमाके दिन श्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके सभी मठोंमें उपवास, संकीर्तन और भाषण-प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें उक्त दिवस संध्यारतिके पश्चात् एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीकुंज बिहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद', श्रीहरिदास ब्रजवासी 'सेवा-कौस्तभ', श्रीरसिक मोहन दासाधिकारी और अन्तमें त्रिदण्डि स्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रीबलदेव तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया। स्वामी जीने बतलाया कि जीवके हृदयमें श्रीबलदेवका चिद्-बल संचारित नहीं होनेसे श्रीकृष्ण पादपद्मके आविर्भावकी उपलब्धि सम्भव नहीं है; श्रीगुरुदेव साक्षात् बलदेवाभिन्न प्रकाश-विग्रह हैं, उनकी कृपासे ही कृष्ण की कृपा हो सकती है।

श्रीश्रीजन्माष्टमी

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १६ भाद्र, २ सितम्बर, शनिवारके दिन समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्णकी जन्माष्टमीका व्रतोपवास और १७ भाद्र, ३ सितम्बर, रविवारको श्रीकृष्ण जयन्तीका पारण और नन्दोत्सव विराट समारोहके साथ मनाया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके सेवकवृन्द मंगलारति के बादसे ही मंदिर और सभा मण्डपको आम्र-पल्लव, कदली वृक्ष और बन्दनवारोंसे विविध प्रकारसे सजाने में लग गये। दूसरी तरफ उसी समयसे त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज, सम्पादक–"बैक–टू–गौडहेड" की अध्यक्षतामें संकीर्तन और श्रीमद्भागवत दशम् स्कंधका परायण चलने लगा जो मध्यरातमें समाप्त हुआ। जन्मके समय त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीमद्भागवतसे जन्म-प्रसङ्गका पाठ किया। ठीक समय पर महा नृत्य-संकीर्तन और भक्तोंकी जय-जयकारोंके बीच भगवानका आविर्भाव और अर्चन-पूजन सम्पन्न हुआ। शहरके शिक्षित-संभ्रान्त पुरुष और महिला भक्तोंसे सभा-मण्डप रातके १२ बजे तक खचाखच भरा रहा। अंतमें सभी लोगोंको अनुकल्पका प्रसाद दिया गया।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण जयन्तीके पारणके पश्चात श्रीनन्दोत्सव भी बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ। निमंत्रित-अनिमन्त्रित सबको श्रीनन्दोत्सवका प्रसाद वितरण किया गया।

—निजस्व-संवाददाता

अपने विचार—

'लोकालोक'--मासिक (हिन्दी), वार्षिक- ४)

माधव पुस्तकालय १०३ ए. कमलानगर देहलीसे शास्त्रार्थ महारथी श्रीपण्डित माधवाचार्य शास्त्री (संस्थापक) की अध्यक्षतामें, श्रीकंठ शास्त्री, व्याकरणाचार्य एम. ए. एवं पं० प्रेमाचार्य शास्त्री एम. ए. महोदयोंकी सम्पादकतामें प्रकाशित होनेवाला 'लोकालोक' भारतीय संस्कृतिका रक्षक और सनातन धर्मका प्रबल प्रचारक पत्र है। विभिन्न अनार्यों और कुसमाजोंके निराधार एवं अतिशय गन्दे आक्षेप रूपी अन्धकारको दूर कर अपनी शास्त्र-सङ्गत सुयुक्तिपूर्ण सुविचार-रश्मि विस्तार करनेके कारण इसका 'लोकालोक' नाम सार्थक हुआ है। धर्म-जिज्ञासु जनताको इसे पढ़ कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

—सम्पादक

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास

[आश्विन]

२३	हृषिकेश,	१	आश्विन	१८	सितम्बर, सोमवार—श्रीराधाष्टमी-व्रत।
२६	,,	४	,,	२१	,, वृहस्पतिवार—पार्श्वैकादशी और श्रीवामन-द्वादशीका उपवास। श्रीजीवगोस्वामीका आविर्भाव।
२७	,,	५	,,	२२	,, शुक्रवार—पूर्वाह्न ६।२८ के पहले पारण। श्रीसच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरका आविर्भाव।
२८	,,	६	,,	२३	,, शनिवार—श्रीहरिदास ठाकुरका तिरोभाव।
२९	,,	७	,,	२४	,, रविवार—श्रीविश्वरूप-महोत्सव।
११	पद्मनाभ	१८	,,	५	अक्टूबर वृहस्पतिवार—इन्दिरा एकादशीका उपवास।
१२	,,	१९	,,	६	,, शुक्रवार—एकादशीका पारण।